पञ्चमावृत्ति

२००५

मूल्य

१।)

श्रीरामकिशोर गुप्त द्वारा

साहित्य प्रेस, चिरगाँव (झाँसी) में मुद्रित ।

पात्र

पुरुष

मघ—भगवान् बुद्ध का एक साधनावतार

अमोघ—मघ के पिता

शोभन—मुखिया का लड़का

वाचक—	मघ के साथी
सुव्रत—	
विशेष—	
विशाल—	
सुमुख—	

ग्राम-भोजक—मचलग्राम का शासक

सुर—एक उद्धत मतवाला

सूचक—मगध की रानी का गुप्तचर

राजा, सैनिक, साधक, मुखिया, चोर इत्यादि

स्त्री

सुरभि—मालिन की पालिता कन्या

रानी, मघ की माँ, मालिन और ग्राम-भोजक की स्त्री

स्थान

मचलग्राम और मगध देश की राजधानी

न तन-सेवा, न मन-सेवा ,
न जीवन और धन-सेवा ,
मुझे है इष्ट जन-सेवा ;
सदा सच्ची भुवन-सेवा ।

श्रीगणेशायनमः

अनघ

राम-कृष्ण ने जहाँ आप अवतार लिया है,
आ आकर बहु बार दूर भू-भार किया है।
वहाँ भला क्यों देव दयामय बुद्ध न आते,
जिनके शुद्ध चरित्र आज जातक हैं गाते।
पातक-नाशक चरित वे
हम सबके भव-भय हरें।
आओ, उनका अनुकरण,
अनुशीलन, अभिनय करें॥

अरण्य

मध

(गान)

विषम विश्व का कोना है ;
मेरा जहाँ बिछोना है ।
पर मैं सोजाऊँ या जागूँ ?
कैसे इसकी तन्द्रा त्यागूँ ?
डट जाऊँ या हटकर भागूँ ?
यह जगना या सोना है ?
विपम विश्व का कोना है ॥
वारंवार ठगाते हैं हम ,
पर क्या भूल भगाते हैं हम ?
फिर फिर घात लगाते हैं हम ;
कैसा जादू टोना है ।
विपम विश्व का कोना है ॥
इसके हित भी इसमें धँसना ,
नहीं आप क्या उलटा फँसना ?
है ऊपर ऊपर का हँसना ,

अनघ

भीतर केवल रोना है !
विषम विश्व का कोना है ॥

रहे प्रवाह भले ही पैना ,
पर मुझको इसका क्या लेना ?
किन्तु कहीं निकला कुछ देना ?
तो क्या वह भी खोना है ?
विषम विश्व का कोना है ॥

वर्त्तमान ही जहाँ तहाँ है ;
भावी का कुछ ध्यान कहाँ है ?
देखा जाता यही यहाँ है—
मीठा है कि सलोना है !
विषम विश्व का कोना है ॥

बदले अपने लाख रंग यह ,
छोड़ेगा क्या सहज ढंग यह ?
स्वयं स्वप्न है, स्वप्न-संग यह—
छूँ छी छाँछ बिलोना है !
विषम विश्व का कोना है ॥

पर क्या यह झूठी रटना है ?
(ईति-भीति दैवी घटना है ।)
उसका वैसा ही फटना है—
जिसका जैसा बोना है ।
विषम विश्व का कोना है ॥

तो क्या अब भी और डरूँ मैं ?
रण में पीछे पैर धरूँ मैं ?
बस, अपना कर्त्तव्य करूँ मैं ;—
हुआ करे जो होना है।
विषम विश्व का कोना ॥

(इधर-उधर देखकर)

यह होगई है रात,
अब शान्ति या संघात ?
यह एक काला वस्त्र,
इसमें छिपे सौ शस्त्र।
कोई करेगा त्राण,
कोई हरेगा प्राण।
निज कार्य अब प्रच्छन्न—
देखे प्रकृति अवसन्न।
कुछ सजग हैं, कुछ सुप्त,
सब तिमिर में हैं लुप्त।
जो थी वही है सृष्टि,
पर विफल-सी है दृष्टि।
अहि-रज्जु की है भ्रान्ति,
यह शान्ति है या क्रान्ति ?
मानों किसी की राह,—
करके अनिल-मिष आह—

अनघ

सज तारकों का थाल,
अब देखता है काल।
मैं आगया किस ओर?
है प्रेत-वन इस ओर।
पर है यही तो स्थान,
सबका शरण्य, समान।
अरि-मित्र, राजा-रङ्क,
यह एक सबका अङ्क।
बाहर रहे विच्छेद,
पर है यहाँ क्या भेद?
शव-सा खड़ा वह कौन?
सन्मुख, अचल, अति मौन।
यह साहसी भी दीन,
किस लोभ में है लीन?
बस, शून्य की ही ओर
हैं ताकते अम-चोर।
हैं भूमि पर सब रत्न,
पर चाहिए कुछ यत्न।
(पास जाकर)
देखो इधर हे शिष्ट,
बोलो, तुम्हें क्या इष्ट?
भगवन, प्रणाम, प्रणाम,

है सिद्ध मेरा काम।
मैं पा गया निज लक्ष,
दर्शन हुए प्रत्यक्ष।
मन को तुम्हें सब ज्ञात,
कैसे कहूँ मैं तात!'

मघ— जिसको तुम्हें—कुछ सोच—
कहते स्वयं सङ्कोच।
वह इष्ट है कि अनिष्ट,
सोचो तुम्हीं हे शिष्ट!

जन— मैं क्या करूँ, यह चित्त
है चाहता बहु वित्त।
चाहूँ प्रभा जो वस्तु,
पाऊँ, कहो बस—अस्तु।

मघ— श्रम करो भद्र, यथार्थ;
हैं सुलभ सर्व पदार्थ।

जन— श्रम? देव, अब भी हाय!
मैं श्रम करूँ निरुपाय?

मघ— जब करो आप उपाय
हैं तभी देव सहाय।

जन— तो देव, जो आदेश,
मिट जायँ मेरे क्लेश।

(पूजन करता है)

मघ— मानों न मुझको देव ,
हूँ लोक-सेवक एव ।

जन— प्रभु, यों न हो वर-पूर्ति ,
यह है मनुज की मूर्ति ?
ये वरद बाहु विशाल
रक्षक रहें चिरकाल ।

(प्रस्थान)

मघ— कैसे इसे विश्वास—
दूँ मैं कि हूँ जन-दास ?
देखूँ, गया किस ओर

(चलकर)

झाड़ी इधर है घोर ,
ऐं, आर्तनाद कठोर ।

(शीघ्रता से जाता है। चार चोर दिखाई देते हैं। वह जन एक ओर अचेत पड़ा है। सिर पर चोट लगी है, जिससे रुधिर बहता है। पास ही उसकी पूजा की थाली पड़ी है।)

तुम लोग हो क्या चोर ?

एक चोर— हाँ, पर मिला क्या माल ?
बस, यह रजत का थाल ।

मघ— यह जन वही है हाय !

रुधिराक्त, मरणप्राय ।
धनहेतु जन-संहार !
यह क्या विषम व्यापार ?

दूसरा चोर— करता यही संसार ,
पर हैं विभिन्न प्रकार ।
जो अबल हैं वे भक्ष्य ,
सबका उन्हीं पर लक्ष्य ।
हम चार थे, यह एक ;
है व्यर्थ करुणोद्रेक ।

मघ— तुम क्रूर भी सज्ञान ,
निज कर्म्म पर दो ध्यान ।

पहला चोर— क्या कर सकेगा ज्ञान ,
बस है स्वभाव प्रधान ।

मघ— सोचो, प्रकृति भी पूर्ण
है बदल जाती तूर्ण ।
पर यह प्रकृति का चित्र ,
तो है विकृति क्या मित्र !
जो है विकृति का भाग ,
क्या कठिन उसका त्याग ?

तीसरा चोर— कुछ है तुम्हारे पास ?

मघ— मत करो यह आयास ।

चौथा चोर— क्यों ?

मघ— यों—करो तुम वार,—
मैं मघ खड़ा तैयार।

चोर— हम चार को ललकार!

(घेरकर)

तो लो, सँभालो वार!

(चोर चारों ओर से वार करते हैं; परन्तु मघ कौशल से निकल कर बच जाता है। दो चोरों की लाठियाँ एक दूसरे के हाथ पर पड़ कर छूट जाती हैं; और वे चोर कराहते हुए बैठ जाते हैं। इतने में मघ झपट कर शेष दोनों चोरों की लाठियाँ छीन कर फेंक देता है। साथ ही दोनों चोरों की गर्दन पकड़ कर उन्हें भी नीचे गिरा देता है। फिर एक लाठी उठा कर और उसे उन सबके ऊपर तान कर कहता है,—यह सब बहुत शीघ्र होता है—)

मघ— अब तो हुआ विश्वास;
था व्यर्थ वह आयास?
जो उठा उसका मुण्ड—
—रह जायगा बस रुण्ड!

तुम किन्तु हो गति-हीन ,
मैं हूँ सबल, तुम दीन ।
हैं अबल मेरे रक्ष्य ,
मानों उन्हें तुम भक्ष्य !
तुम लोभ से हो अन्ध ,
लो, यह कनक कटि-बन्ध ।
जाओ, सभी उठ हाल ,
छूना न कोई थाल ।

पहला चोर— मणिबन्ध लें किस भाँति ?
मघ— मैं दे रहा जिस भाँति ।
चोर— पर क्या हमें अधिकार—
जो हम करें स्वीकार ?
लें भीख किंवा दान ,
तो है बड़ा अपमान ।
मघ— इस लूट में है मान ?
चोर— है क्योंकि इसमें जान !
है वर्ग जिनका सैन्य ,
अनुचित उन्हें है दैन्य ।
मघ— आः ! बन्धु, इतना बोध ।
देगा तुम्हें पथ-शोध ।
होगा अवश्य सुधार ,
समझो इसे उपहार ।

मानों न और प्रमाद,
यह आज की है याद।
"है वर्ग जिनका सैन्य,
अनुचित उन्हें है दैन्य।"
यह है उन्हीं की रीति
मेटें अधर्म्म, अनीति।
ठहरो, चलूँ मैं आप;
लेकर तुम्हारा पाप—।
यह जन हुआ म्रियमाण,
भरसक करूँ मैं त्राण।
अवसर नहीं अब और,
जल है कहीं इस ठौर?
होता यहाँ यदि नीर

चोर— तो कृषि न होती वीर।
हैं जीर्ण घस, वे स्तूप;
तो मैं खनूँगा कूप।

मघ— मेरा वही व्यायाम,
जिससे कि हो कुछ काम।
(मूर्च्छित जन को सावधानी से
उठाकर मघ का प्रस्थान)

तीसरा चोर— टूटा रहा! यह हाथ!
चौथा चोर— मेरा इसी के साथ।

तीसरा— (पहले से)
अरि जा रहा है, मार ;
चौथा — कर झपट पीछे वार ।
पहला— पर मैं गया हूँ हार ,
दूसरा— यह चिन्ह है उपहार ।
पहला— तो अब किया क्या जाय ?
दूसरा— सोचें चलो सदुपाय ।

——

चौपाल

मुखिया और कुछ मनुष्य

मुखिया— अजी, यह मच है अच्छा सनकी,
जिसे तन की सुध है न बदन की।
गाँव भर के सुधार का सारा,
लिये बैठा है आप इजारा।
न करके उन्नति अपने घर की,
फिक्र करता है वह बाहर की।

एक— मरम्मत कभी कुओं-घाटों की,
सफाई कभी हाट-बाटों की,—
आप अपने हाथों करता है;
गन्दगी से भी कब डरता है!
डराता है फिर भी औरों को;
तनिक देखो इसके तौरों को।

दूसरा— बालकों को वह फुसलाता है,
कमल जल में घुस-घुस लाता है।

और कहता है लो, ऐसे हो ,
सहन यह वृद्धों को कैसे हो ?
साधुता सब में हो आ जावे ,
गृहस्थी कहाँ ठौर फिर पावे ?

तीसरा— आ रहा था मैं अभी उधर से ,
निकल कर एक वधू निज घर से ।
फेंकने लगी राह में कूड़ा ,
वहाँ था मानों कोई घूड़ा !
पड़ोसिन ने जो उसको रोका ,
कहा तो उसने खाकर झोका—।
कि जीता है तेरा मघ जौलों
तुझे क्या इसकी चिन्ता तौलों ?
इसी पर होने लगी लड़ाई ,

चौथा— यही है उसकी बड़ी बड़ाई ।
इसीको यदि सुधार हम मानें ,
कहो, किसको बिगाड़ फिर जानें ?

मुखिया— अजी, वह समदर्शी बनता है ,
उच्च हो नीचों में सनता है ।
यही तो सदाचार है उसका ,
जाति पर कहाँ प्यार है उसका ?

पहला— जाति भी फिर क्यों उसको मानें ?
करे जो कुछ वह जी में ठानें ।

मुखिया— नहीं, यह कैसे हो सकता है ?
न जानें वह क्या क्या बकता है ?
नित्य ही सन्ध्या को उपवन में ,
सुरभि—परिपूरित शुद्ध पवन में ।
उड़ाया करता है वह बातें ;
कौन समझेगा उसकी घातें ?
न रोकोगे विचार यदि ऐसे ,
रहेगी मर्य्यादा फिर कैसे ?

चौथा— किन्तु हैं मनुज मात्र सम जिसको ,
द्विजों से शूद्र नहीं कम जिसको ,
तुला जो आप तुच्छता पर है ,
उसे क्या जाति-पाँति का डर है ?

मुखिया— राज-भय तो उसको भी होगा ,
जायगा जो न सहज ही भोगा ।
भूल जावेंगे भाषण सारे ,
ग्राम-भोजक हैं साथ हमारे ।

तीसरा— किन्तु यह मेरी राय नहीं है ,
क्योंकि यह उचित उपाय नहीं है ।
मतस्वातन्त्र्य न छिने किसी का ,
नाम है न्याय-विधान इसी का ।
यहाँ शासन का हाथ नहीं है ,
दमन में मेरा साथ नहीं है ।

देख कर दीप किसी के द्वारे,
चमकते हैं यदि नेत्र हमारे;
इसे हम हट कर क्यों न सुझा दें,
किन्तु यह उचित नहीं कि बुझा दें।
गन्ध है भिन्न-भिन्न सुमनों का,
भाव है यों ही मनुज-मनों का।
सुहावेगा जो गन्ध न तुमको;
मिटा दोगे क्या उसके द्रुम को?

मुखिया— शास्त्र यह अपना तुम रहने दो;
मुझे भी तो अब कुछ कहने दो।
नियम कब कब कितने पलते हैं?
काम यों ही जग के चलते हैं।
मौन हो तेजोधन, क्यों? बोलो,
व्यवस्था सोचो, विधि-निधि, खोलो।

पहला— कैफियत उससे माँगी जावे—
और वह कर्म्मों का फल पावे।

चौथा— आ रहा लो, वह आप इधर है,
दुपहरी में चल पड़ा किधर है?

(मघ मार्ग से जाता हुआ प्रवेश करता है)

तीसरा— कहें हम चाहे जो कुछ, फिर भी,
मूर्ति है इसकी शान्त, रुचिर भी।
शिरोपरि चिकुर-जाल शोभन है,—

सुधा-मधु-चक्र लोक-लोभन है।
मुकुरता देखो तो इस मुख की—
पड़ी है छाया-सी पर-दुख की।
शुष्क आभा ही नहीं दृगों में,
सरसता इतनी कहाँ मृगों में?
प्रकृति में क्या ही भोलापन है;
आर्द्र उर में ज्यों ओलापन है।
गौर तनु-कान्ति, सौम्य, शुभरुचि है;
सहज ही दीख रहा यह शुचि है।
हाथ हैं लम्बे लम्बे कैसे,
सुलभ हैं ऊँचे फल भी जैसे।
धीर-गति त्रिविध पवन तकता है,
ताप तलवे भी छू सकता है?

मुखिया— तभी तो जाना जाता बक है,
साधुता भी तो सीमा तक है।
अजी मघ, सुनो, कहाँ जाते हो?
निकल तुम ऐसे में आते हो,
साहसी और सहिष्णु बड़े हो,
बद्ध-कटि देखो जहाँ खड़े हो।
किन्तु यह तप की दोपहरी है,
प्रकृति मानो गूँगी बहरी है।
जिधर देखो, भाँ भाँ, भाँ भाँ है,

सुनाई पड़ती बस साँ साँ है।
विचारो यह विश्राम-समय है ;
धूप का भी न तुम्हें कुछ भय है ?

मघ— तात, भय तो है छाया में भी ;
व्याधियाँ हैं इस काया में भी।
और विश्राम ? समय को कब है ?
पवन भी बहता देखो जब है।

तीसरा— किन्तु तुम तो न समय, न पवन हो ;
मृदुल मानव हो, जीवित जन हो।

मघ— स्वयं मैं नहीं जानता क्या हूँ ?
मानता आत्मा की आज्ञा हूँ।
समय-भागी हूँ, नहीं समय हूँ ,
नहीं मारुत, पर मारुत-मय हूँ।
नहीं मैं तत्व, तत्व मुझमें हैं ,
कि उनके सभी सत्व मुझमें हैं ,
हमीं छोटे हैं, हमीं बड़े हैं।
हमीं कोमल हैं, हमीं कड़े हैं ,
कभी खोटे हैं, कभी खरे हैं ;
अभी जीते हैं, अभी मरे हैं।
चाहता हूँ कि मनुष्य रहूँ मैं ,
और अपने को वही कहूँ मैं।
बनूँ बस मनुष्यता का मानी ,

यही हो मेरी एक निशानी।
प्रकृति है गीली मिट्टी ऐसी,
पकालो गढ़ कर चाहे जैसी।
धूप से तरु भी तो जलते हैं,
पथिक ऐसे में भी चलते हैं।
न जावे प्यासी उनकी टोली,
इसी से पथ पर प्याऊ खोली।
देखने उसको ही जाता हूँ,
रोगियों से मिलता आता हूँ।
देर हो गई, खिन्न माँ होगी,
किन्तु बच गया रात का रोगी।
बहुत मधु उसने पान किया था,
अर्थ दे आप अनर्थ लिया था।

मुखिया— किन्तु तुमने भी नशा पिया है,
अभी तक भोजन नहीं किया है!
क्षुधित माँ घर में क्षुब्ध खड़ी है,
और बाहर की तुम्हें पड़ी है।

मघ— तात! मैं अभी अभी आता हूँ,
खिलाकर साथ उसे खाता हूँ।
आप सबका अनुशासन सुन लूँ,
सुमन-सम उसको मन में चुन लूँ।

मुखिया— यही कहना है हमको भाई,

कि तुमने अच्छी कीर्ति कमाई ।
किन्तु नीचों को सिर न चढ़ाना ,
न सामाजिक विद्रोह बढ़ाना !

मघ— जहाँ कुछ भी समाज का हित हो ,
वहीं यह मेरा तनु अर्पित हो ।
(नमस्कार करके
प्रस्थान)

मुखिया— लक्ष्य अब इस पर रखना होगा ,
नहीं तो हमें बिलखना होगा ।

मघ का घर

द्वार पर मघ की माँ

कौन धूप की बात कहे,
लूह लपट की घात रहे;
जो निज श्वास निकलते हैं,
अङ्ग उन्हीं से जलते हैं।
हा! फिर भी मघ बाहर है,
उसे न मेरा भी डर है।
खान-पान का ध्यान नहीं,
निज तनु तक का ज्ञान नहीं।
जिनके हित वह मरता है,
जिनकी सेवा करता है,
वे ही उस पर क्रोध करें!
विस्मय है कि विरोध करें!
ईश्वर को भी जो न डरे,
हितुओं की ही हँसी करे,
वह कृतघ्न संसार हरे!
कैसे उबरे और तरे?

कि तुमने अच्छी कीर्ति कमाई।
किन्तु नीचों को सिर न चढ़ाना,
न सामाजिक विद्रोह बढ़ाना!

मघ— जहाँ कुछ भी समाज का हित हो,
वहीं यह मेरा तनु अर्पित हो।

(नमस्कार करके प्रस्थान)

मुखिया— लक्ष्य अब इस पर रखना होगा,
नहीं तो हमें बिलखना होगा।

मद्य का घर

द्वार पर मद्य की माँ

कौन धूप की बात कहे ,
लूह लपट की घात रहे ;
जो निज श्वास निकलते हैं ,
अङ्ग उन्हीं से जलते हैं ।
हा ! फिर भी मद्य बाहर है ,
उसे न मेरा भी डर है ।
खान-पान का ध्यान नहीं ,
निज तनु तक का ज्ञान नहीं ।
जिनके हित वह मरता है ,
जिनकी सेवा करता है ,
वे ही उस पर क्रोध करें !
विस्मय है कि विरोध करें !
ईश्वर को भी जो न डरे ,
हितुओं की ही हँसी करे ,
वह कृतघ्न संसार डरे !
कैसे उबरे और तरे ?

किन्तु हाय ! मेरा बच्चा ,
है कितना सीधा-सच्चा ।
सब पर प्रत्यय रखता है ,
स्वयं प्रेम-रस चखता है ।
व्यापे काल न भूल उसे ;
कर्म्म रहे अनुकूल उसे ।
दैव उसे देखे-भाले ,
मैंने जना प्रकृति पाले ।
जो जन आते जाते हैं ,
वे भी नहीं बताते हैं ;
कि वह दिखाई दिया कहीं ;
सेवक भी तो फिरा नहीं ।
आह ! आ गया, वह आया ;
स्वेद अरुण मुख पर छाया ।
वहाँ रजःकण रह न सके ,
पर बालों के बह न सके ।
मानों मधुप पराग-सने ,
उस अम्बुज के रसिक बने—
जिसका कोष खुला रवि से ,—
शोभित हिम-मौक्तिक छवि से !
श्रम-सन्तप्त मूर्ति इसकी
(स्वयं-सिद्ध शुचिता जिसकी)

सह्य नहीं मुझको ऐसी,
उपण हेम-मुद्रा जैसी।
अच्छा, आज समझ लूँगी,
अब न कहीं जाने दूँगी।
अनुनय-विनय व्यर्थ है सब,
भुला सकेगा मुझे न अब।

मघ— आह! क्षमा कर अम्ब, मुझे;
हुआ विशेष विलम्ब मुझे।
मेरे बिना न खाने का—
हठ क्यों कष्ट उठाने का?

माँ— कष्ट? अबोध बताऊँ क्या?
जी की बात जताऊँ क्या?
तू माँ नहीं कि जान सके,
माँ का मन पहचान सके।
हैं निश्चिन्त पिता तेरे,
सुनते नहीं वचन मेरे।
वे बन्धन-से तोड़ रहे,
तुझे तुझी पर छोड़ रहे।
क्या मैं भी न तुझे देखूँ?
भावी को सब कुछ लेखूँ?
होगी जब सन्तान तुझे,
तब होगा कुछ ज्ञान तुझे।

अब तेरी न सुनूँगी मैं,
कन्या-कुसुम चुनूँगी मैं।
किसी सुशीला बाला से,
फूलों की-सी माला से।
तुझे बाँध कर रक्खूँगी;
तब जीवन-फल चक्खूँगी।
देखूँ फिर क्या करता है?
कितना कहाँ विचरता है?
किन झगड़ों में फँसता है?
हट, पागल तू हँसता है!
क्या मैं यों ही बकती हूँ?
तेरे मारे थकती हूँ।

मघ— देख कल्पना-मग्न तुझे,
अम्ब, आगई हँसी मुझे।
बन्धन बड़ा निराला है,
वह फूलों की माला है!
मुझे तोड़ना भी न पड़े,
स्वयं झड़े जो और सड़े!

माँ— बेटा, ऐसी बात नहीं;
तुझे स्नेह-गुण ज्ञात नहीं।
देखेगा तब जानेगा,
जानेगा तब मानेगा।

चुम्बक जहाँ देख पाता—
लोहा तक है खिंच आता।

मघ— पर तू मुझको पालेगी,
या बन्धन में डालेगी?

माँ— बन्धन? वे स्वाभाविक हैं,
भव-नौका के नाविक हैं।
लोक लोक-बन्धन खोता,
तो वह उच्छृङ्खल होता।
मेरा निश्चित मत है यह;
बस अब चुप रह, कुछ मत कह।
शुद्ध सरल विश्वासों पर,
छोड़ न तर्कों के खर-शर।
वाद वस्तुतः बाधक है,
कब इतना भी साधक है,—
कि तू अमुक जन का सुत है।
तर्क सदा संशय-युत है!
चल, अब स्वेद-सलिल सूखा,
आज रहेगा क्या भूखा?

मघ— भूखा ही रह जाऊँगा,
सचमुच आज न खाऊँगा।
तू क्यों भूखी रहती है?
हठ करके दुख सहती है।

माँ— सो तू भी हठ करता है ?
मुझ पर भूखों मरता है ?
मघ— क्या कहना है माँ, इसका ?
आखिर बेटा हूँ किसका ?
यदि तू भोजन कर लेती ,
और मुझे भी रख देती ,
तो क्या अभी न खाता मैं ;
या न आज घर आता मैं ?
माँ— क्या जानें कुछ ठीक नहीं ,
पर यह बात अलीक नहीं ।
जब तक खिला न लूँ तुझको ,
भूख नहीं लगती मुझको ।
मघ— अच्छा, एक युक्ति सुन तू ,
जो मैं कहता हूँ गुन तू ।
मोदकादि झोली में भर ,
प्रति दिन मुझे दे दिया कर ।
साथ उन्हें मैं रक्खूँगा ;
जहाँ रहूँगा, चक्खूँगा ।
माँ— चक्खेगा कि चखावेगा ?
अब तू भुला न पावेगा ।
पर यह तो कुछ बुरा नहीं ,
खावे तू भी साथ कहीं ।

मघ— नहीं जननि, मैं खाऊँगा ;
और परम सुख पाऊँगा ।
जो सहकारी हों मेरे ,
वे भी पोष्य बनें तेरे ।

माँ— अच्छा, चल अब कुछ खा-पी ;
(चौंककर)
अरे, कौन है यह पापी ?

(नेपथ्य में) जियो, मनुष्यो, जियो, जियो ;
सुर बन जाओ, सुरा पियो !

मघ— हा ! मतवाले हो होकर ,
सारी सुधबुध खो खोकर ,
मनुज दनुज-से फिरते हैं ,
निज गौरव से गिरते हैं ।
मातः ! मान वचन मेरे ,
पैरों पड़ता हूँ तेरे ।
तू खा, मैं फिर खा लूँगा ;
प्रथम धर्म्म निज पालूँगा ।
उलटा हुआ ज्ञान जिसका
भार हमीं पर है उसका ।
जाऊँ, उसे सँभालूँ मैं ,
जन-सेवा-व्रत पालूँ मैं ।
खींच रहा कर्त्तव्य मुझे ,

माँ क्या हठ है उचित तुझे ?

माँ— आह ! दीनता यह तेरी
विश्व-प्रियता की प्रेरी
करती है लाचार मुझे ;
कैसे रोकूँ और तुझे ?
तेरे भरे आँसुओं पर
वारूँ मैं मुक्ता भर भर ।
जा, जी में कुछ सोच न कर ,
तू मेरा सङ्कोच न कर ;
दे सन्तोष सदय मन को ,
किन्तु सँभाले रह तन को ।

(नेपथ्य में) जियो, मनुष्यो जियो, जियो ,
सुर बन जाओ, सुरा पियो !

मघ— भाई, मनुष्यत्व देकर
क्या होगा कुछ भी लेकर ?
'अपना मनुष्यत्व खोना'
है बस प्रेत मात्र होना !

(प्रस्थान)

(नेपथ्य में) क्यों रे, मैं हूँ प्रेत ? भला ,
छुड़ा सकेगा तू न गला ।
यदि न आज तुझको मारूँ
तो सुर नाम न मैं धारूँ ।

माँ— हा ! क्या होने वाला है ?
यह उद्धत मतवाला है।
चलूँ, न पापी गला धरे,
दैव भले का भला करे।

उद्यान

सुरभि

(गान)

उनको पाकर किस पुण्य कार्य ने
　　नये प्राण-से पाये ?
आ पहुँचा समय, परन्तु समय के
　　साथी आज न आये !

यह सन्ध्यातप का सहज सुनहला
　　मुकुट बाँध वृक्षाली ,
पथ देख रही है खड़ी सजाये
　　फल-फूलों की डाली ।
अम्बर की लाली पकड़ रही है
　　धरती की हरियाली ;
संवाद ले रहा पवन कि अब तक
　　कहाँ रहे वनमाली ?
लो, मेरे आगे अन्धकार ने
　　अब ये पैर जमाये ।
आ पहुँचा समय, परन्तु समय के
　　साथी आज न आये !

निकलो तो हे निश्वास, वायु में
धीरे से मिल जाओ,
तुम उनके अङ्ग न छुओ, ढङ्ग से
चरण-धूलि ले आओ।
हे भाव-भृङ्ग, हृत्कञ्ज-कोष में
ही तुम रोओ-गाओ;
उनके गौरव की ओर न निज
लघुता की हँसी कराओ।
रक्खो मन में ही उन्हें कि जो हैं
मोद-रूप मन भाये।
आ पहुँचा समय, परन्तु समय के
साथी आज न आये!

जिसको वे चाहें प्राण, उसी में
मिलकर उनको चाहो;
अपने को इसी प्रकार जगत में
किसी प्रकार निबाहो।
तुम छोड़ जल्पना, मौन-कल्पना—
मानस में अवगाहो;
उनको मधुरस्मृति मिलो, इसी को
अपना भाग्य सराहो।

इतना समझाया तदपि हाय ! तुम
नयन, नीर भर लाये ।
आ पहुँचा समय, परन्तु समय के
साथी आज न आये !

जाऊँ तो उनके यहाँ आप मैं जाऊँ,
उनकी माँ को फल-फूल भेंट कर आऊँ ।
उनके दर्शन भी वहाँ कदाचित् पाऊँ,
उस शान्त रूप को देख अशान्ति मिटाऊँ ।
चलती तो हूँ पर नेत्र, न लज्जा करना,
हो जावेगा अन्यथा आप ही मरना !
तुम बनें जहाँ मुहँ-चोर, पकड़ जाऊँगी ;
निज मकड़-जाल में आप जकड़ जाऊँगी !
रख लेना मेरी लाज आज तुम अड़कर,
गड़ जाना कहीं न आप लाज में पड़कर ।
विश्वास तुम्हारा नहीं, न जाऊँगी मैं ;
मन के भेदी तुम, तुम्हें दबाऊँगी मैं ।
संयम ही उनके उच्च हृदय का बल है ;
पर-हित ही उनके प्रेम विजय का फल है ।
त्यागव्रत ही विश्वस्त वर्म है उनका ;
निष्काम कर्म ही परम धर्म है उनका ।
मैं तुच्छ, किन्तु आश्वास बड़ा है उनका ;

सब सहने का अभ्यास पड़ा है उनका ।
वे ऊँच-नीच का भेद नहीं कुछ रखते,
हैं मनुज मात्र को एक समान निरखते ।
ओ तू मेरी आसक्ति, भक्ति हो उनकी,
इस तुच्छ देह में प्राणशक्ति हो उनकी ।
सुन सुन कर सायंकाल उन्हीं की बातें,
गुन गुन कर बहुधा बिता चुकी मैं रातें ।
मन, डिगा न मुझको मैं न वहाँ जाऊँगी;
चाहूँगी उनको जहाँ वहाँ पाऊँगी ।
मैं नहीं टलूँगी, नहीं टलूँगी, सुन तू,
ले बैठ गई हूँ, उठा, लाख सिर धुन तू ।
उनका यह आसन आज पड़ा है सूना,
पर झलक रहा वह रूप दृष्टि में दूना ।
इन फूलों के ही सङ्ग प्रेम का प्रेरा
उनके चरणों पर चढ़े सभी कुछ मेरा ।

(फूल चढ़ाकर प्रणाम करना)

(मालिन का प्रवेश)

मालिन—ओ सुरभि, अनघ मघ आज नहीं आवेंगे,
उनके साथी भी समय नहीं पावेंगे ।
आ जा, यदि उनके यहाँ तुझे चलना है,—
उनकी माँ पर यह ताल-वृन्त झलना है ।
ले ले थोड़े फल-फूल, देर मत कर तू,

इतना समझाया तदपि हाय ! तुम
नयन, नीर भर लाये ।
आ पहुँचा समय, परन्तु समय के
साथी आज न आये !

जाऊँ तो उनके यहाँ आप मैं जाऊँ,
उनकी माँ को फल-फूल भेंट कर आऊँ ।
उनके दर्शन भी वहाँ कदाचित् पाऊँ,
उस शान्त रूप को देख अशान्ति मिटाऊँ ।
चलती तो हूँ पर नेत्र, न लज्जा करना,
हो जावेगा अन्यथा आप ही मरना !
तुम बने जहाँ मुहँ-चोर, पकड़ जाऊँगी ;
निज मकड़-जाल में आप जकड़ जाऊँगी !
रख लेना मेरी लाज आज तुम अड़कर,
गड़ जाना कहीं न आप लाज में पड़कर ।
विश्वास तुम्हारा नहीं, न जाऊँगी मैं ;
मन के भेदी तुम, तुम्हें दबाऊँगी मैं ।
संयम ही उनके उच्च हृदय का बल है ;
पर-हित ही उनके प्रेम विजय का फल है ।
त्यागव्रत ही विश्वस्त वर्म है उनका ;
निष्काम कर्म ही परम धर्म है उनका ।
मैं तुच्छ, किन्तु आश्वास बड़ा है उनका ;

सब सहने का अभ्यास पड़ा है उनका ।
वे ऊँच-नीच का भेद नहीं कुछ रखते ,
हैं मनुज मात्र को एक समान निरखते ।
ओ तू मेरी आसक्ति, भक्ति हो उनकी ,
इस तुच्छ देह में प्राणशक्ति हो उनकी ।
सुन सुन कर सायंकाल उन्हीं की बातें ,
गुन गुन कर बहुधा बिता चुकी मैं रातें ।
मन, डिगा न मुझको मैं न वहाँ जाऊँगी ;
चाहूँगी उनको जहाँ वहाँ पाऊँगी ।
मैं नहीं टलूँगी, नहीं टलूँगी, सुन तू ,
ले बैठ गई हूँ, उठा, लाख सिर धुन तू ।
उनका यह आसन आज पड़ा है सूना ,
पर झलक रहा वह रूप दृष्टि में दूना ।
इन फूलों के ही सङ्ग प्रेम का प्रेरा
उनके चरणों पर चढ़े सभी कुछ मेरा ।

(फूल चढ़ाकर प्रणाम करना)

(मालिन का प्रवेश)

मालिन—ओ सुरभि, अनघ सब आज नहीं आवेंगे ,
उनके साथी भी समय नहीं पावेंगे ।
आ जा, यदि उनके यहाँ तुझे चलना है ,—
उनकी माँ पर वह ताल-वृन्त झलना है ।
ले ले थोड़े फल-फूल, देर मत कर तू ,

लौटेगी मेरे साथ रात तक घर तू ।

सुरभि— (आप ही आप)

मैं नहीं टलूँगी, नहीं टलूँगी, जा तू ,
कै बार कहूँ, सिर हाय ! न मेरा खा तू ।

मालिन—बेटी, तू पागल हुई जान पड़ती है ,
मैंने तुझसे क्या कहा कि जो लड़ती है ?
तू बड़े ध्यान से ज्ञान सुना करती है ,
मन-ही-मन कुछ दिन-रात गुना करती है ।
तेरा माथा फिर गया अन्त में ऐसे ,
हम लघु जन हैं, गुरु-भार सहेंगे कैसे ?
हाथी का भार न बैल खींच सकता है ।

सुरभि— (सँभल कर)

हाथी भी जोत न बो न सींच सकता है !
माँ, भूल गई मैं, चूक हो गई मुझसे ,
धोखे में क्या कह गई न जानें तुझसे ।
हाथी हाथी का, बैल बैल का जैसे
मानव ही मानव-कार्य्य करेंगे वैसे ।

मालिन—तू क्यों ऐसी सुध-भूल रहा करती है ?
क्या जानें क्या क्या नहीं कहा करती है !
मैं माँ हूँ, इससे सभी सहे लेती हूँ ;
पर सास सहेगी नहीं कहे देती हूँ !

सुरभि—मैं ब्याह करूँगी तब न सास आवेगी ।

मालिन—जो नहीं करेगी ब्याह कहाँ जावेगी ?
सुरभि— क्यों मुझे यहाँ क्या ठौर नहीं मनचाही ?
मालिन—रक्खेगा युवती सुता कौन अनब्याही ?
रहने दे यह सब मुझे नहीं भाता है ;
दिन-दिन तेरा वैराग्य बढ़ा जाता है।
सचमुच भीतर का ध्यान जिन्हें धर लेगा,
बाहर का कैसे उन्हें दिखाई देगा ?
जो हो, मुझको अवकाश नहीं, अब जाऊँ,
जगदीश करे मैं उन्हें कुशल से पाऊँ।
सुरभि— माँ, किन्हें ? किसे क्या हुआ, बता मुझको तो,
मालिन—क्या कहूँ क्षोभ है, कान नहीं तुझको तो।
हो रहीं स्वामिनी आज बहुत ही अस्थिर,
आया है कोई देव सुना उनके सिर।
सुरभि—तू क्या बकती है ? किन्तु हुआ कुछ निश्चय,
वे उपवन आये नहीं इसी से है भय।
माँ, मैं भी तेरे साथ अवश्य चलूँगी ;
मालिन—तू तो कहती थी अभी कि मैं न टलूँगी।
सुरभि—झखमारी जो यह कहा, न फिर सिर खा तू ;
मैं सबसे पहले वहाँ चलूँगी, आ तू।
(प्रस्थान)
मालिन— (चकित भाव से)
क्या इस पर भी पड़ गई प्रेत की छाया ?

क्या जानूँ कैसा समय हाय ! अब आया !
मैं ने इसको है बड़े प्यार से पाला,
फिर भी यह है अति उच्च वंश की बाला।
निज कुल के सब संस्कार बने हैं इसमें,
गुण-गौरव ज्ञान निदान घने हैं इसमें।
मेरी गोदी में इसे अन्त में धर के,
इसकी माँ तो निश्चिन्त हो गई, मर के।
दे गई मुझे कुछ द्रव्य और वे गहनें,
मानों हम थी दो सगी प्रेम की बहनें।
मैं भी कैसे निश्चिन्त हो सकूँ इससे ?
अपने जी की यह बात कहूँ अब किससे ?
वे कहते हैं वर योग्य प्राप्त कैसे हो ?
करना ही होगा प्राप्त किन्तु जैसे हो।

(प्रस्थान)

कुछ नवयुवक

शोभन— समझ नहीं पड़ता कि समाज
मघ पर खड्गपाणि क्यों आज ?
वाचक— शोभन, यह है सीधी बात ,—
मुखिया न हैं तुम्हारे तात ?
सुव्रत— वाचक, अनुचित है यह ढंग ,
सरल रहो सरलों के संग ।
शोभन— सुव्रत, न करो व्यर्थ विवाद ,
मुझको इन पर नहीं विषाद ।
किया पिता ने कुछ प्रतिकूल
तो मैं मानूँगा वह भूल ।
और करूँगा प्रायश्चित्त ,
जुड़े आज हम इसी निमित्त ।
वाचक, भाई, न हो अधीर ,
है यह विषय तनिक गम्भीर ।
इधर सभी प्राचीन समाज
है विरुद्ध-सा मघ से आज ,
होने पर भी उधर अबाध
इसने किया कौन अपराध ?

समझ नहीं पड़ता कुछ ठीक ;
क्या वह छोड़ रहा है लीक ?

वाचक— लाक पीटने से क्या लाभ ?
अन्ध नहीं वह है अमिताभ ।
हैं समाज के लोचन लुप्त ,
भावे क्यों कर ज्योतिःपुञ्ज ?
मघ का सक्रिय शुभ संकल्प
बना यहाँ अपराध अनल्प ।

विशेष— पर उसके हितकर उद्योग
देख नहीं सकते यदि लोग ,
तो क्यों वह देता है प्राण ,
करने को उन सबका त्राण ?

वाचक— वाह, विशेष, तुम्हारी उक्ति !
दी तुमने क्या अच्छी युक्ति ।
पर जब शैशव में सुख भोग
तुम्हें हुआ होगा कुछ रोग
तब तुमको माँ के उपचार
लगते होंगे विष से यार ।
देख तुम्हारा रोदन-रोष ,
सुन आँ आँ ऊँ ऊँ का घोष ;
करती वह न तुम्हारा यत्न ,
तो उस जननी के तुम रत्न ,

जीते रहते आज न मित्र ,
देने को यह युक्ति विचित्र ।

विशेष— मैं शिशु था वह माँ थी आप ,
मय है क्या समाज का बाप ?

सुव्रत— वह है सब का बन्धु उदार ,
क्षुद्र नहीं उसका परिवार ।
हममें-उसमें यही प्रभेद
मन में करो विशेष, न खेद ।

विशेष— करते हैं जो लोग विरोध
क्या वे हैं शिशु-सदृश अबोध ?

वाचक— पर उनमें भी ईर्ष्या, द्वेष ,
अहम्मन्यता, स्वार्थ, विशेष ।
पक्षपात-दुर्बलता, द्रोह ,
दम्भ, कपट, मद-मत्सर-मोह ।
मैं जो कहता हूँ सो स्पष्ट ,
न हो किसी को इससे कष्ट ।
न तो किसी पर चन्दन लेप
न यह किसी पर है आक्षेप ।
कड़वी होकर भी सच बात
ओषधि ऐसी है विख्यात ।
निज समाज पतनोन्मुख आज ;
जैसा वह वैसे ही साज ।

सुव्रत— देव और पशुओं के बीच
हम मानव हैं ऊँच कि नीच,
चञ्चल मन दोनों ही ओर
ले जाता है हमें झकोर।
मघ ऐसे जन ही स्थिर चित्त
होते हैं वसुधा के वित्त।
क्या देवों से भी चिरकाम्य
हो सकता है उनका साम्य?
नव वय में ही इतना बोध!
इतना त्याग विराग निरोध!!
स्वर्ग-मर्त्य का सामञ्जस्य
है उनका उद्योग-रहस्य।
शोभन— स्वर्ग-मर्त्य का सामञ्जस्य
है पीछे की बात वयस्य!
सुना है कि वह करके नाद
फैला रहा निरीश्वरवाद।
सुव्रत— मिथ्या हा! जड़ता-जञ्जाल
सुन लो, उस दिन सायंकाल
वहाँ उपस्थित था मैं आप
होता था जब यह आलाप।
उसने कहा—मान लो मित्र,
ईश्वर सही काल्पनिक चित्र।

पर सुकर्म तो हैं प्रत्यक्ष ;
रक्खें हम उन पर ही लक्ष ।
रहे भले ही वह अज्ञेय ,
किन्तु ज्ञेय गुण तो हैं ध्येय ।
करने लगे इसी पर लोग
उस पर नास्तिकता-अभियोग ।
वाचक— मानों ईश्वर से वे आप
कर आये हैं अभी मिलाप ।
अपने ईश्वर के अनुकूल
कर्म्म नहीं करते जो भूल
वे आस्तिक, सब नास्तिक हाय !
जो है सुकृतों का समुदाय ।
विशेष— मान लिया सब है आदर्श ,
पर अछूत लोगों का स्पर्श ?
वाचक— इसका भी निर्णय हो जाय ,
नहीं अछूत मनुज क्या हाय !
अपमानित अवनत वे दीन ,
क्या पशुओं से भी हैं हीन ?
मरें भले ही वे बेहाल
तो भी इनकी न हो सँभाल ?
सुमत— करें अशुचिता सब की दूर ,
इनसे घृणा करे सो क्रूर ।

जिनके बल पर खड़ा समाज ,
रहती है शुचिता की लाज ,
उनका त्राण न करना, खेद !
है अपना ही मूलोच्छेद ।
मघ का मनुज मात्र पर प्यार ,
मनुज न है वह आप उदार ।
करके किसी मनुज पर ग्लानि
कैसे करे मनुजता-हानि ?

वाचक— शोभन, समझ रहे हैं आप—
निरपराध है वह निष्पाप ।
फिर भी जहाँ अनेक सरोष
किसी एक पर रक्खें दोष ,
तो न्यायी जन भी प्रत्यक्ष
ले न सकेगा उसका पक्ष ;—
यदि उनमें साहस है अल्प ,
मानेगा सङ्कल्प-विकल्प ।
ये समाज के ठेकेदार
देखें अपने ही आचार ।
इन दिन के ऊँचों के बीच
हैं दस में नौ निशि के नीच !
ज्वारी मद्यप कामी चोर
देखें वे अपनी ही ओर ।

यही बने हैं धर्म्म-स्तम्भ
हा ! परमेश्वर इतना दम्भ !
करते हैं ऐसे ही लोग
मघ पर बहु मिथ्या अभियोग ;
रखता है जो सबका मान ,
जिसकी है विश्रुत यह बात—
चाहो मन से सबका क्षेम ;
करो प्रहारक पर भी प्रेम ।

(विशाल का प्रवेश)

विशाल— ठीक यही उसका सिद्धान्त ,
लो इसका मुझसे दृष्टान्त ।
आज एक मतवाला दुष्ट
पहुँचा मघ के घर हो रुष्ट ।
था इसमें किसका षड्यन्त्र ,
रहने दो यह विषय स्वतन्त्र ।
अपने को सुर कह कर आप
बकने लगा अनाप शनाप ।
करने उसकी शीघ्र सँभाल
घर से निकला मघ तत्काल ।
बोला तुम सुर साधु चरित्र ,
तो जन का गृह करो पवित्र ।
लो आतिथ्य अर्चना और

ठहरो हे ठाकुर, इस ठौर ।
इतने पर भी वह पाषण्ड ,
जो था असुर-रूप उद्दण्ड ,
रक्त-नेत्र, करके हुङ्कार
उस पर करने चला प्रहार ,—
झट मघ की माँ ने दे ओट ,
ली अपने ऊपर वह चोट ।
बेचारी गिर पड़ी धड़ाम ;
निकला बस मुहँ से हे राम !
वह भी अपने मघ के अर्थ ,

सब— राम राम ! हा घोर अनर्थ !

शोभन— उस देवी का—नहीं, विशाल ,
उस माँ का अब है क्या हाल ?

विशाल— बुरा नहीं, खल था ज्यों अन्ध ,
रिपटा वार, छिला है स्कन्ध ।

सुव्रत— बड़ा सहायक है भगवान ,
मघ ने फिर क्या किया निदान !

विशाल— जगी, देख माँ का यह हाल ,
आँखों में द्रुत विद्युज्ज्वाल ।
पर क्षण भर में ही वह धीर ,
हुआ सघन घन-सा गम्भीर !
पकड़ खेद से खल का हाथ

बोला यों करुणा के साथ—
"हा अभाग्य, हम दो जन हाल
करते तेरी जहाँ सँभाल
वहाँ अकेला अब मैं एक,
और सेव्य तुम दो सविवेक।"
यह कह माँ को उठा तुरन्त
और उसे भी वह बलवन्त,
भीतर चला मनुज सिरमौर,
तब तक मैं पहुँचा उस ठौर।
इसी लिए मुझको इस वेर
हुई पहुँचने में कुछ देर।
अब दोनों हैं स्वस्थ, परन्तु
आज मनुज-रूपी वह जन्तु,
यदि मघ करता नहीं सहाय
तो मर जाता मृतकप्राय।
जीता भी तो बिना विवाद
होता मरणाधिक उन्माद।
विशेष— पर है यह विस्मय की बात—
जिसने किया विषम आघात
बल रहते भी उसे न मार
किया उसी पर मघ ने प्यार।
अस्वाभाविक-सी अज्ञात

समझो इसे अलौकिक बात ।

सुव्रत— मघ है आप अलौकिक व्यक्ति,
उसमें है वैसी ही शक्ति ।

विशाल— मुझे बतादो अब सब लोग
निज निश्चय, अपना उद्योग ?

शोभन— मैं निश्चय कर चुका सटीक,

सुव्रत— मैं भी,

वाचक— मैं भी,

विशेष— मैं भी,

विशाल— ठीक;
तो अब है मेरी यह राय
यहाँ प्रकट कुछ किया न जाय ।
चलो, चलें हम सब अविभक्त
और करें मघ पर ही व्यक्त ।

मघ का घर

(मघ की माँ लेटी है । कन्धे पर पट्टी बँधी है ;
सुरभि पैर दबा रही है । मघ हाथ में
दूध का पात्र लेकर
प्रवेश करता है)

मघ— माँ, अब तेरा जी कैसा है ?

माँ— कष्ट नहीं अब कुछ ऐसा है ।
सुरभि बड़ी अच्छी है बाला ,
इसने मुझको ख़ूब सँभाला ।
आकर ओषधि मुझे खिलाई ,
औंटो करके आप पिलाई ।

मघ— तो मेरा भी गुण मा थोड़ा ,
मैंने तुझे सुरभि पर छोड़ा ।

सुरभि— देखो, माँ अब अधिक न बोलो ,
दुर्बलता है, हिलो न डोलो ।

माँ— बेटी, तेरी सब मानूँगी ,
पर मघ से न मौन ठानूँगी ।
बस अब पैर दाब मत मेरे ;
थक कर हाथ पसीजे तेरे ।

मघ, मैं तेरे गुण क्या गाऊँ,
बस उनको सुनती ही जाऊँ।
तूने मुझे सुरभि पर छोड़ा,
इसका भार आप ले थोड़ा।
इसका ब्याह करूँगी मैं सुन,
अच्छा पात्र कहीं से तू चुन।
(सुरभि की माँ की ओर देखती है)

मालिन— इस कुल का कल्याण सदा हो,
दूर विघ्न, बाधा, विपदा हो।
ऋद्धि, सिद्धि, धन, धान्य धरा हो,
आँगन सुत-सन्तान भरा हो।

मघ— सब आशीष प्रथम दे लोगी
तो काकी, पीछे क्या दोगी ?

मालिन— जो पहले सो पीछे जानों,
तुमने कहाँ, हुआ वह मानों।

मघ— पर मैंने क्या कहा अभी है ?

मालिन— भैया, मुझको ज्ञात सभी है।
तुम अपना मत भी टालोगे,
पर माँ की आज्ञा पालोगे।

मघ— समझ गया मैं, सुरभि तुम्हारा
कहा किया करती है सारा।

माँ— दुर्लभ सुता सुरभि जैसी है,

देख लजीली भी कैसी है।
सुनकर अपनी यहाँ बड़ाई,
बैठी है यह किये कड़ाई।
अब वह तेरा सुर कैसा है?

मघ— फिर बन रहा मनुज-जैसा है।
माँ, तुझसे, जाने के पहले,
उसकी इच्छा है, कुछ कह ले।
किन्तु कहाँ साहस होता है,
मानों उसका मन रोता है।

माँ— मैंने उसको क्षमा किया है;
कह देना, आशीष दिया है।
जो अपनी सो सबकी आत्मा,
सबका भला करे परमात्मा।

मघ— माँ मेरी, बस अब मैं जाऊँ,
दूध गरम कर उसे पिलाऊँ।
मेरे सब विश्वास यहीं हैं
मातृ-रूपिणी स्त्रियाँ जहाँ हैं।

सुरभि— दीजे, दूध गरम मैं कर दूँ;
थाली में कुछ फल-बल धर दूँ।

मालिन— यह सब मुझको कैसे भावे,
कौन साँप को दूध पिलावे?

मघ— नागपञ्चमी आज सही वो।

सुरभि— हैं आर्यों के भाव यही तो।

(मघ के हाथ से दूध लेने में सुरभि को कम्प होता है, और पात्र उसके हाथ से छूट जाता है; दूध फैल जाता है)

सुरभि— अरे !

मालिन— देह की सुध-बुध खोकर,
भक्ति-भाव से गद्गद होकर,
आखिर तूने दूध गिराया;
मन न हाथ की ओर फिराया।

मघ— काकी, रहो तुम्हारे डर से
दूध गिर गया कम्पित कर से।

माँ— हुआ दूध का क्या टोटा है ?
कुण्ड भरें यह तो लोटा है।
सौ गायें भैंसें हैं मेरे,
वत्स घूमते हैं घर घेरे।

सुरभि— दूध तुम्हारा ही रक्खा है,
तुमने तो मानों चक्खा है।

माँ— माँ का रोप निकाल न मुझ पर,
वेटी मेरी, जा जल्दी कर।

(सुरभि गई)

(सुरभि की माँ भी जगह साफ करके हाथ धोने गई। मघ के

पिता अमोघ आये । मघ की माँ
को उठते देख कर—)

अमोघ— रहो, रहो, निर्बल हो अब भी ।

माँ— स्वस्थ, सचेत हुई हूँ तब भी ।

अमोघ— तुझे पूछते हैं कुछ बालक ,
शोभन है उनका सञ्चालक ।

मघ— देखूँ, पूछ रहे क्यों मुझको ?

माँ— (हाथ पकड़ कर)
पर जब मैं जाने दूँ तुझको !
वचन ब्याह का जब ले लूँगी ,
तब तुझको मैं जाने दूँगी ।
होती आज बहू यदि मेरी
तो सुविधा होती बहुतेरी ।
सभी व्यवस्था कर देती वह ,
मेरा भार उठा लेती वह ।

अमोघ— मघ, यह ज्ञात हुआ है मुझको
है आपत्ति ब्याह पर तुझको ।
केवल पढ़ा-लिखा कर थोड़ा
मैंने तुझे तुझी पर छोड़ा ।
तुझे न मैं बाधा देता हूँ ,
न कुछ काम तुझसे लेता हूँ ।
है विश्वास कि तू न थकेगा ,

सुरभि— हैं आर्यों के भाव यही तो।

(मघ के हाथ से दूध लेने में सुरभि को कम्प होता है, और पात्र उसके हाथ से छूट जाता है; दूध फैल जाता है)

सुरभि— अरे !

मालिन— देह की सुध-बुध खोकर,
भक्ति-भाव से गद्‌गद होकर,
आखिर तूने दूध गिराया;
मन न हाथ की ओर फिराया।

मघ— काको, रहो तुम्हारे डर से
दूध गिर गया कम्पित कर से।

माँ— हुआ दूध का क्या टोटा है ?
कुण्ड भरें यह तो लोटा है।
सौ गायें भैंसें हैं मेरे,
वत्स घूमते हैं घर घेरे।

सुरभि— दूध तुम्हारा ही रक्खा है,
तुमने तो मानों चक्खा है।

माँ— माँ का रोष निकाल न मुझ पर,
बेटी मेरी, जा जल्दी कर।

(सुरभि गई)

(सुरभि की माँ भी जगह साफ करके हाथ धोने गई। मघ के

पिता अमोघ आये। मघ की माँ
को उठते देख कर—)

अमोघ— रहो, रहो, निर्बल हो अब भी।

माँ— स्वस्थ, सचेत हुई हूँ तब भी।

अमोघ— तुझे पूछते हैं कुछ बालक,
शोभन हैं उनका सञ्चालक।
देखूँ, पूछ रहे क्यों मुझको ?

मघ— (हाथ पकड़ कर)

माँ— पर जब मैं जाने दूँ तुझको !
वचन ब्याह का जब ले लूँगी,
तब तुझको मैं जाने दूँगी।
होती आज बहू यदि मेरी
तो सुविधा होती बहुतेरी।
सभी व्यवस्था कर देती वह,
मेरा भार उठा लेती वह।

अमोघ— मघ, यह ज्ञात हुआ है मुझको
है आपत्ति ब्याह पर तुझको।
केवल पढ़ा-लिखा कर थोड़ा
मैंने तुझे तुझी पर छोड़ा।
तुझे न मैं बाधा देता हूँ,
न कुछ काम तुझसे लेता हूँ।
है विश्वास कि तू न थकेगा,

अपना भार सँभाल सकेगा।
किन्तु व्याह करने से डरना
है कुल से कृतघ्नता करना।
भाव भुवन ने जिसे दिये जो,
अनुभव जिसने जहाँ किये जो,
हो अस्तित्व उसी तक सबका
तो यह जग सो जावे कब का।
प्राणी आत्मज के ही द्वारा
रखता है निज जीवन-धारा।
तेरी जो चेष्टा भाती है,
वह मनुष्यता की थाती है।
उसका रक्षक पोता मेरा,—
हो सकता है सुत ही तेरा।
जन उलटे फल भी चखते हैं,
पर आशा अच्छी रखते हैं।
माता, भगिनी, पत्नी, कन्या,
नारी ही नर-कुल-धन-धन्या।
पत्नी रूप प्रकृत नारी का,
मूलभूत इस फुलवारी का,
जब तेरे सम्मुख आवेगा
सहधर्म्मिणी उसे पावेगा।
उसकी मातृमूर्ति सम्मुख है,

तेरा सुख ही इसका सुख है।
कह अब जो तुझको कहना है?

मघ— मुझे यहाँ चुप ही रहना है।
है विवाह आदेश तुम्हारा
मैंने वह सिर से स्वीकारा।

माँ— मैंने तुझसे सब भर पाया।
(हाथ जोड़ कर)
रहे क्षेम की तुझ पर छाया।

चबूतरा

मघ और शोभनादि

मघ— नूतन विशेष भाव, और मेरे धर्म का ;
प्रश्न है तुम्हारा यह मित्रो, किस मर्म्म का ?
क्या हमारा शास्त्र धर्म्म-सार-हीन हो गया ,—
खोजने चले तुम विशेष भाव जो नया ?
धर्म्म में भी इष्ट हमें नव्यता का मेल है ,
मानों वह भौतिक पदार्थ है या खेल है ।
उर्वर उदार उन कल्पना के क्षेत्रों में
चारों ओर नव्यता ही नाचती है नेत्रों में ।
कोटि-कोटि रौरव हैं, कोटि-कोटि स्वर्ग हैं ;
भीत और मुग्ध जिन्हें देख प्राणि-वर्ग हैं ।
किन्तु जो नया है आज कल ही पुराना है ;
धर्म्माधर्म्म का फिर कहो कहाँ ठिकाना है ?
प्रति दिन एक नये धर्म्म पर दृष्टि हो
तो तो फिर नित्य नये ईश्वर की सृष्टि हो !
धर्म्म तो सनातन है, सिद्ध वह आप है ,
पुण्य सदा पुण्य तथा पाप सदा पाप है ।
विधियाँ बदलती हैं, मत हैं बदलते ,

नये नये लोकाचार लोक में हैं चलते।
किन्तु मूल धर्म्म सब काल, सब देशों में,
एक-सा ही पाओगे अनेक भिन्न वेशों में।
मेरा धर्म्म? वह क्या तुम्हारा नहीं भाइयो?
मेटना मनुष्यता न मेरी कहीं भाइयो!

शोभन—अपने गुणों से आप आज तुम नर से
हो चुके हो सौम्य मर्त्य लोक में अमर-से।

वाचक—पीछे पड़े मत्सरी तभी तो दैत्य-सम हैं।

मघ— दैत्य-कुल में भी श्लाघ्य संयम-नियम हैं।
किन्तु मित्रो, मैं तो एक साधारण व्यक्ति हूँ,
रखता सभी पर समान श्रद्धा-भक्ति हूँ,
साधारण लोकधर्म मेरा ध्रुव धर्म्म है,
फल हो किसीके हाथ, मेरे हाथ कर्म्म है।

शोभन—साधारण व्यक्ति तुम? जाने दो, यही सही,
आये हम, याचना हमारी बस है यही—
अपना व्यक्तित्व तुम दो इस समष्टि को।

मघ— इष्ट है समष्टि आप आश्रयार्थ व्यष्टि को।
याचना नहीं है यह दान ही तुम्हारा है;
धन्य भाग्य मेरा है।

शोभन— तुम्हारा या हमारा है?
प्राप्त हुआ आज तुम जैसा जिन्हें नेता है,
देता है स्वयं जो किन्तु मानों आप लेता है।

चबूतरा

मघ और शोभनादि

मघ— नूतन विशेष भाव, और मेरे धर्म का ;
प्रश्न है तुम्हारा यह मित्रो, किसे मर्म्म का ?
क्या हमारा शास्त्र धर्म्म-सार-हीन हो गया ,—
खोजने चले तुम विशेष भाव जो नया ?
धर्म्म में भी इष्ट हमें नव्यता का मेल है ,
मानों वह भौतिक पदार्थ है या खेल है ।
उर्वर उदार उन कल्पना के क्षेत्रों में
चारों ओर नव्यता ही नाचती है नेत्रों में ।
कोटि-कोटि रौरव हैं, कोटि-कोटि स्वर्ग हैं ;
भीत और मुग्ध जिन्हें देख प्राणि-वर्ग हैं ।
किन्तु जो नया है आज कल ही पुराना है ;
धर्म्माधर्म्म का फिर कहो कहाँ ठिकाना है ?
प्रति दिन एक नये धर्म्म पर दृष्टि हो
तो तो फिर नित्य नये ईश्वर की सृष्टि हो !
धर्म्म तो सनातन है, सिद्ध वह आप है ,
पुण्य सदा पुण्य तथा पाप सदा पाप है ।
विधियाँ बदलती हैं, मत हैं बदलते ,

नये नये लोकाचार लोक में हैं चलते।
किन्तु मूल धर्म्म सब काल, सब देशों में,
एक-सा ही पाओगे अनेक भिन्न वेशों में।
मेरा धर्म्म? वह क्या तुम्हारा नहीं भाइयो?
मेटना मनुष्यता न मेरी कहीं भाइयो!
शोभन—अपने गुणों से आप आज तुम नर से
हो चुके हो सौम्य मर्त्य लोक में अमर-से।
वाचक—पीछे पड़े मत्सरी तभी तो दैत्य-सम हैं।
मघ— दैत्य-कुल में भी श्लाघ्य संयम-नियम हैं।
किन्तु मित्रो, मैं तो एक साधारण व्यक्ति हूँ,
रखता सभी पर समान श्रद्धा-भक्ति हूँ,
साधारण लोकधर्म मेरा ध्रुव धर्म्म है,
फल हो किसीके हाथ, मेरे हाथ कर्म्म है।
शोभन—साधारण व्यक्ति तुम? जाने दो, वही सही,
आये हम, याचना हमारी बस है यही—
अपना व्यक्तित्व तुम दो इस समष्टि को।
मघ— इष्ट है समष्टि आप आश्रयार्थ व्यष्टि को।
याचना नहीं है यह दान ही तुम्हारा है;
धन्य भाग्य मेरा है।
शोभन— तुम्हारा या हमारा है?
प्राप्त हुआ आज तुम जैसा जिन्हें नेता है,
देता है स्वयं जो किन्तु मानों आप लेता है।

मघ—　तुम अपनाने मुझे मेरे घर आये हो,
प्रेम ऐसी वस्तु स्वयं मेरे लिये लाये हो।
मैं क्या प्रतिदान दूँ बताओ इसके लिए?
सौंपता हूँ आपको ही चाहो जिसके लिए।
किन्तु मेरी माँ का अनुरोध रख लीजिए,
कुछ जल-पान यहाँ आज सब कीजिए।
विशाल—देवता-प्रसाद भला कौन नहीं चाहेगा?
पाके उसे भाग्य नहीं अपना सराहेगा?
वाचक—आज जो पधारे यहाँ एक महासुर हैं
आतुर हमारे उन्हें देखने को उर हैं।
मघ—　क्षमा करो मित्रो उसे, माँ ने भी क्षमा किया;
मन ने ही उसके धिक्कार उसे है दिया।
लज्जित को और भी लजाना अविचार है;
आप अनुताप बड़ा पाप-प्रतिकार है।
उसने किया जो वह आपे में न होने से;
होते आत्मघात भी हैं सुधबुध खोने से।
पापों से घृणा करो, प्रयत्न करो, पापी का;
व्यंग्य छोड़ सङ्ग दो सदैव अनुतापी का।
सुव्रत— जो जो करणीय हो बता दो हम लोगों को।
साधें यथासाध्य सब पावन प्रयोगों को।
मघ—　मित्रो, मैं बता चुका हूँ साधारण व्यक्ति हूँ,
रखता असाधारण सिद्धियाँ न शक्ति हूँ।

कामना भी मुझको नहीं है कुछ इनकी ,
धन्य हैं वे लोकातीत साधना है जिनकी ।
कोई यह चाहे कि मैं योगविद्या सीखूँगा ;
देखूँगा सबको किसीको नहीं दीखूँगा ।
किंवा यन्त्र-मन्त्र सीख सब कुछ पाऊँगा ;
चाहूँगा जहाँ मैं पक्षि-तुल्य उड़ जाऊँगा ।
होगी उसे नित्य मेरे निकट निराशा ही ,
मेरे लिए यह सब है बस तमाशा ही ।
जो कुछ है प्राप्त हमें वह भी अधिक है ;
किन्तु उपयोग नहीं होता ठीक धिक है !
चाहे शव-साधन की चिन्ता और चाह है ;
किन्तु हमें जीवितों की कुछ भी न आह है ।
धन्य हैं वे सिद्ध जो मरों को जिला लेते हैं ,
हम मरतों को ही सहारा कहाँ देते हैं ?
आत्म-बलिदान करो तो है कुछ करना ;
मृतक जिलाने से बड़ा है आप मरना !
स्वर्ग और मुक्ति दोनों मृत्यु-फल मिष्ट हैं ;
तो सुख स्वतन्त्रता ही जीवन में इष्ट हैं ।
मेरा अभिन्नात्मा, फिर कोई वह क्यों न हो ,
आर्त्त परतन्त्र है, तो मैं भी क्या नहीं, कहो ?
मित्रो, परिसीमा यही मेरे गुण-ज्ञान की ,
धारणा है इसके रूपान्तर में ही ध्यान की ।

मिलना न हो जावे कठिन !
झगड़े बहुत होते नहीं,
हाँ तो निपटते हैं वहीं।
शासक रहा मैं नाम का,
कर्त्ता वही सब काम का।
उसको दबाना चाहिए,
कुछ सैन्य लाना चाहिए।
बस अब इसी उद्देश से
जाकर मिलूँ मगधेश से।

भार्य्या— पर मिल सकोगे किस तरह ?

भोजक— देखूँ बनेगा जिस तरह।
उपहार देने के लिए
फिर भी अधिक कुछ चाहिए।
घर से न कुछ देना पड़े,
देखूँ कहीं से कुछ झड़े।

भार्य्या— पर लोग कहते हैं यहाँ
राजा निकलते ही कहाँ ?
वे अधिकतर रनवास में
हैं मग्न हास-बिलास में।

भोजक— ये नारियाँ—

भार्य्या— **हाँ हाँ कहो,**
श्रवणार्थ भी प्रस्तुत रहो।

पर नृप न रहते यदि वहाँ
पटती तुम्हारी तो कहाँ ?

भोजक— सुर ने न उस दिन कुछ किया,
मुझको बड़ा धोखा दिया।
अब श्रम मुझे करना पड़ा,
तो दण्ड भी होगा कड़ा।
मघ राज-विद्रोही बने,
पावें सही नाकों चने।
विष-दन्त सब झड़ जायँगे,
लाले यहाँ पड़ जायँगे।
कोई न साथी भी बचे,
जो जाल फिर अपना रचे।

भार्य्या— पर यह तुम्हारी भ्रान्ति है;
विद्रोह क्या, क्या क्रान्ति है ?
वे सब स्वयं दुख झेलकर,
जी जान पर भी खेलकर,
करते सभी का हैं भला;
कोई गया उनसे छला ?
कितने कदाचारी दनुज
बन कर सदाचारी मनुज,
सद्भाव-भव में भर रहे,
गुण-गान उनके कर रहे।

वे दूसरों के दोष पर
उन पर न कुछ भी रोष कर
उपहास करते आप हैं ;
सहते स्वयं अनुताप हैं ।
सब में अहिंसा-भाव है ,
पाण्डित्य का ही चाव है ,
सुख-शान्ति का प्रस्ताव है ,
पर-दुःख का ही दाव है ।
जिसमें न कोई पाप हो ,
हिंसा असत्य न ताप हो ,
वह काम करने में कहीं
उनको घृणा होती नहीं ।
संसार-त्यागी भी नहीं
वे किन्तु रागी भी नहीं ।
दें प्रेम-वश धरना कहीं
तो दोष इसमें है नहीं ।
धन है उन्हें जन के लिए ,
जन हैं नहीं धन के लिए ।
तुम-सा न स्वार्थ, न मोह है ,
तो क्या यही विद्रोह है ?

भोजक— नृप-नीति कहते हैं किसे
जानो भला तुम क्या इसे ?

जो दो जनो का मन्त्र है
वह भी वहाँ षड्यन्त्र है !

भार्य्या— तब तो कुचक्री हैं सभी ,
जैसे कि हम दोनों अभी ।

भोजक— हैं अङ्ग हम तो राज्य के ।

भार्य्या— तुम अग्नि हो उस आज्य के ।
तब तो प्रजा की यह दशा ।

भोजक— तुम हो बड़ी ही कर्कशा !
बस नारि-तुल्य रहो अहो ।

भार्य्या— तुम भी मनुज बनकर रहो ।

भोजक— देखो, न हो कलहातुरा ।

भार्य्या— अन्याय से यह क्या बुरा ?

भोजक— मैं त्याग दूँगा अब तुम्हें ,

भार्य्या— मैं रोकती हूँ कब तुम्हें ?
पर छूटती जाया कहाँ ?
इस जीव से काया जहाँ ।
यह कह कि लो जाओ मरो ,
तुम ध्यान भी मेरा करो ।
मैं किन्तु वह नारी नहीं ,—
मर कर चली जाऊँ कहीं !
मैं कर्कशा हूँ ? किस लिए ?
तुम तो सदय हो, इस लिए ।

यह लोक-पीड़न नित नया,
पहले मरी जिसमें दया,
वह शीत हिम, वह ग्रीष्म तप;
वह गालियों का भीष्म जप,
रह रह विभिन्नाघात वह,
मानों अयुत पवि-पात वह,
वह क्षुत्पिपासा की व्यथा,
वह काम लेने की प्रथा;
दुर्विध नरों का धन हरे,
अबला जनों का तन भरे,
जिह्वा न जल जाये कहीं!
धरती न टल जाये कहीं!
यह सब सहा जाता नहीं;
चुप भी रहा जाता नहीं।
चीत्कार दीनों का यहाँ
है गूँजता देखो जहाँ।
किस हेतु यह? तनु-तृप्ति-हित?
सोचो यही क्या है उचित?

भोजक— क्या चाहती हो तुम, रहो,
दोषी न दण्डित हों कहो?

भार्य्या— दो दोषियों को दण्ड तुम,
यम-तुल्य उग्र प्रचण्ड तुम।

पर दोष ये जिससे घटें ,
कुछ पाप लोगों के कटें ,
क्या और भी इसके लिए
कुछ यत्न तुमने हैं किये ?
यह सब तुम्हें क्यों भायगा ?
वह लाभ जो घट जायगा !
यदि दण्ड में भी हो क्षमा
तो रूठ जाये फिर रमा !

भोजक— ठहरो कि दासी आ रही ,

भार्य्या— हाँ, लो, पियो, वह ला रही ।
पर मधु नहीं, कुछ ध्यान है ,
यह दीन-शोणित-पान है ।

दासी— देगा न और कलाल अब ।

भोजक— क्यों, क्या हुआ, कह हाल सब ?

दासी— मघ ने उसे ऐसा सजा
व्यवसाय यह उसने तजा ।
जो दूसरी दूकान है
वह भी न टूटे आन है ।

भोजक— अब प्रिय इन्हें भी धर्म्म है !

भार्य्या— हाँ जो तुम्हारा कर्म्म है !

भोजक— मैं अब समय क्यों खो रहा ?

भार्य्या— हाँ मध्य ठंडा हो रहा !

उपजाता है विपरीत भाव ,
जैसे वर्षा में विरज व्योम ,
जगमग तारे या सजग सोम ।
जो अच्छा है समयानुसार ,
असमय में बनता है विकार ।

राजा— पर कर लेना कालाभिकार
क्या यह भी है जीवन-विकार ?

रानी— यह तो है जीवन का महत्व ,
है इसमें ही पुरुषत्व सत्व ।
पर इस पौरुष का क्षेत्र एक—
उद्यान मात्र ! करिए विवेक ।

राजा— मत करो कठिन बनकर विचार ,
यह किसकी पूजा का प्रकार ?
होकर भी राज्यासनासीन
हूँ प्रिये, तुम्हारा मैं अधीन ।

रानी— हे नाथ, तुम्हारा आनुकूल्य
मेरा गौरव-धन है अमूल्य ।
मुझको उसका है गर्व मानि ,
निज स्वार्थ भाव पर किन्तु ग्लानि ।
उन लाखों लोगों के समीप
दोषी-सी हूँ मैं हे महीप ,
जिनका रञ्जन है राज-कर्म्म ,

कर-रूप वृत्ति पाकर सधर्म्म ।
इस कारण यह ऐश्वर्य सर्व
करता है उलटा गर्व खर्व ।
मानों हम हैं इसके अपात्र ,
यह है चोरी या लूट मात्र ।
रानी हूँ फिर भी हाय ! नाथ ,
निज की कौड़ी तक नहीं हाय !
लज्जा देती है मनस्ताप ,
सुनती-सी हूँ दूराभिशाप ।
यह हरा-भरा मधुवन विशाल
मानों लाखों का रक्त लाल
पीकर भी भीतर शुष्क भूप ,
है खड़ा झाड़-झंखाड़ रूप ।
सुन सुनकर यहाँ पतङ्ग-गान
होता है मुझको आप भान
यह कोकिल-कुल की कलित कूक
. ।
पीड़ित हृदयों की
मुझ पर प्रसून-ि
हँसते हैं हरया
या कलियों के
दिखलाते हैं
ठंडी बयार

जन रख न सकेंगे बुझे दीप !

राजा— तो और कहो सो किया जाय ?
जिससे न तुम्हें चिन्ता सताय।
चल रहा सहज शासन-विधान,
हैं सभी विभागों के प्रधान।
क्या कर सकती है एक व्यक्ति ?

रानी— पर प्रजा-दत्त है राजशक्ति;
वह है अटूट।

राजा— यह ठीक उक्ति,
पर कहाँ नहीं उसकी नियुक्ति ?

रानी— पर प्रभो, उसी का दुरुपयोग
हो, तो फिर है वह राजरोग।

राजा— क्या हुई कहीं कुछ बुरी बात ?

रानी— ईश्वर न करे ऐसा विघात।
फिर भी मन रहता है सशङ्क;
है अकर्मण्यता भी कलङ्क।

राजा— क्या करने से हो तुम्हें तोष ?

रानी— है मेरा ही है देव, दोष।
पृथ्वी के पति हैं प्रथम भूप,
पीछे जिसके हों प्रेम रूप।
पर पृथ्वी एवं प्रजा वर्ग
दोनों का धन, जीवन निसर्ग

मानों वञ्चित कर उन्हें नाथ ,
मैं हर बैठी हूँ एक साथ ।
लौटा दूँ तो कुछ मिटे क्षोभ ;
पर कैसे छोड़ूँ यह सुलोभ ?

राजा— हे प्रिये, न हो निर्दय, न दीन ,
मैं एक तुम्हारे ही अधीन ।

रानी— तो चलो, प्रभो; यह राज्य छोड़ ,
यह बाधक वैभव-जाल तोड़ ।
हम चलें वहाँ, बस—जहाँ नाथ ,
कोई न तीसरा रहे साथ ।
गिरि, गुहा-गेह, घन-विजन-कुञ्ज ,
कुछ कन्द-मूल-फल, फूल-पुञ्ज ।
निर्झर निपात हो, कुछ न और ;
हम रहें चैन से उसी ठौर ।
मैं तुमको, तुम मुझको विलोक
भूलें दोनों भव-रोग-शोक ।
ये पुष्प-पुञ्ज क्यों ? हार-हेतु ?
सो भी मेरे शृङ्गार-हेतु ?

राजा— तुम चलो जहाँ मेरी उमङ्ग ।
मैं चल सकता हूँ सङ्ग-सङ्ग ।
खींचा तुमने जो विजन-चित्र
वह तो है अति ही प्रिय; पवित्र ।

फिर भी है क्या समयानुकूल ,
जाओ इसको भामिनि ! न भूल ;

रानी— तो आज्ञा दो फिर मुझे आह !
इन चरणों की एकान्त राह
मैं इस गौरव के साथ साथ
देखूँ कि प्रजा-हित-निरत नाथ ।
सन्ताप सहूँ घर गृहस्तम्भ ।
मिल कर न दे सकूँ उपालम्भ ।
मेरी वीणा झङ्कारहीन ,—
ज्यों राज-चाप टङ्कारहीन !
पर वाणी में कुछ सद्विचार
हों तो कृतार्थ हूँ वार वार ।

राजा— उस जीवित वीणा का निनाद ,
पर जाने दो, यह व्यर्थ वाद ।
तुमने यथार्थ ही कहा आज ,
देखूँगा मैं सब राज-काज ।
करके अपना कर्तव्य-कर्म्म
पालूँगा सच्चा राज-धर्म्म ।
होगा न किसी का कहीं घात ,
अब चलो चलें, हो गई रात ।

मुखिया और चौपाल

मुखिया और उसका एक साथी

मुखिया— मेरा सुत भी अन्त में
पड़ मघ के अघ-दन्त में
निकल न जावे हाथ से ,
फँसे न उसके साथ से ।

साथी— केवल शोभन ही नहीं ,
मेरा लोभन भी वहीं ।
अब तो दल-सा हो गया ,
फिरा कौन फिर जो गया ?

मुखिया— अच्छा देखा जायगा ,
वह इसका फल पायगा ।
मुझको भी उसने छला ,
घर न जला दूँ तो भला ।
निकल जाय सब दम्भ वह ,
ढहे ढोंग का खम्भ यह ।

साथी— पर मेरी तो राय है
उसका व्यर्थ उपाय है ।
नहीं चलेगा काम यह ,

होगा अब बदनाम वह ।
रचना तो वह रच रहा ,
किन्तु स्वयं कब बच रहा ।
ज्ञात नहीं कुछ भी उसे
जो उसके दल में घुसे
उनमें ऐसे भी मनुज
जो यथार्थ में हैं दनुज ।
लम्पट, लुब्ध, लबार भी ,
जाली, जुवारी, जार भी ।
भला सही सब मान लो ,
पर यह भी तो जान लो
क्यों न जायगा वह छला
जो सबको समझे भला ?
देखो जो यह आ रहा ,
रेंक रहा था गा रहा ।
खूब जानता हूँ इसे ,
क्या है कर न सके जिसे ?
कल के वञ्चक आज ये
सेवक बने समाज के ।
जाऊँ देखूँ काम अब ,
तुम भी लो विश्राम अब ।
(सुमुख का प्रवेश)

सुमुख— (गाने के ढँग पर)
दूर रहें या पास हम
मन से सबके दास हम।
मुखिया— कहो सुमुख, क्या हाल है ?
तुमने किया कमाल है।
सुमुख— कूप प्रेत वन में बना ,
आप अनघ ने जो खना।
फल उसका जल-पान है ,
उसका ही सामान है।
शोभन—
मुखिया— यह तो हो रहा ,
कौन बीज हल बो रहा ?
सुमुख— यही कि सब जन हों सुखी ;
रहे न कोई भी दुखी।
दिया अनघ ने दान है
उनका जो उद्यान है।
जो अनाथ असहाय हैं ,
उनके वहाँ उपाय हैं।
पाते हैं शिक्षा सभी ,
व्यवहारिक दीक्षा सभी।
वहाँ कई गृह बन गये ,
और बन रहे हैं नये।

[illegible] ।
[illegible] ,
[illegible] ।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ।
[illegible] ,
[illegible] ।
[illegible] ,
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ,
[illegible] ।
जाय जानता हूँ इसे ,
क्या है पर न सके जिसे ?
जन के मजाक आज से
सेवक बने समाज के !
आओ देखें धाम आप ,
तुम भी तो पियास छाप ।
([illegible] का [illegible])

सुमुख— (गाने के ढँग पर)

दूर रहें या पास हम
मन से सबके दास हम।

मुखिया— कहो सुमुख, क्या हाल है?
तुमने किया कमाल है!

सुमुख— कूप प्रेत वन में घना,
आप अनघ ने जो खना।
फल उसका जल-पान है,
उसका ही सामान है।

शोभन—

मुखिया— यह तो हो रहा,
कौन बीज हल बो रहा?

सुमुख— यही कि सब जन हों सुखी;
रहे न कोई भी दुखी।
दिया अनघ ने दान है
उनका जो उद्यान है।
जो अनाथ असहाय हैं,
उनके वहीं उपाय हैं।
पाते हैं भिक्षा सभी,
व्यवहारिक शिक्षा सभी।
वहाँ कई गृह बन गये,
और बन रहे हैं नये।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
रोगों का प्रतिकार भी ,
[illegible]
[illegible]
मेलों-ठेलों में हमीं ,
उत्सव-मेलों में हमीं ,
करते प्रेम-प्रचार हैं ,
सेवा और सुधार हैं ।
पहले के अपराध सब
होते नहीं अबाध अब ।
सुरा-पान भी घट रहा ,
कलह आप ही हट रहा ।
प्रहरी-सम पाकर हमें
चोर बहुत अब हैं कमें ।

वैलों पर ही अब जुआ
आकर आरोपित हुआ।
शोभन भी—
सुखिया— मालूम है;
आज तुम्हारी धूम है।
पर न इसे भूलो कभी
पछताओगे तुम सभी।
द्रोही तुम अवनीश के,
और स्वयं उस ईश के।
सुमुख— यह क्या कहते आप हैं?
क्या हम करते पाप हैं?
शोभन भी—
सुखिया— पहले सुनो,
और उसे मन में गुनो।
पाते जो जन कष्ट हैं,
पतित और जो भ्रष्ट हैं,
प्रश्रय देते हो उन्हें;
अपना लेते हो उन्हें।
करते हो तुम हृष्ट यों,
होगा ईश्वर तुष्ट क्यों?
सुना तनिक झगड़ा कहीं,
तुम झट जा कूदे वहीं।

माता, [illegible]-क्षुब्ध हो ,
पर क्या [illegible]-विमुख हो ?
नृप का काम विचार है ;
[illegible] क्या [illegible] है ?
[illegible] ,
[illegible] ,
दिन पर दिन जो बढ़ चला ।
अन्त आज वह क्या चला ?
थी ही [illegible] न एक दिन
भू-भर जिनका हो ऋणि ।
उन [illegible] गत हों ,
मन के [illegible] धन [illegible] ।
अब न किसी को कुछ कहा ,
इसी लिए मैंने कहा—
विद्रोही तुम ईश के ,
और स्वयं अवनीश के ।
ईश्वर की चिन्ता नहीं ,
वह तो मरने पर कहीं
स्वर्ग-नरक पहुँचायगा ;
वह तब देखा जायगा ।
पर जीते जी भूप का ,
इन्द्र-अग्नि-यम-रूप का ,

दण्ड मिलेगा जब तुम्हें
जान पड़ेगा तब तुम्हें ।
मैं शुभचिन्तक हूँ, तभी ,
कहता हूँ तुमसे अभी ।

सुमुख— क्या करना होगा मुझे ?
या मरना होगा मुझे ?

शोभन—
मुखिया— वह बच जायगा ,
पुरस्कार भी पायगा ।
पर ये सब बातें कहीं
तुम इसमें कहना नहीं ।
अब कुछ ऐसी युक्ति हो ,
कि तुम्हारी भी मुक्ति हो ।

सुमुख— बड़ी कृपा है आप की ;

शोभ—
मुखिया— शान्ति कुछ पाप की ?
इसकी सीधी गैल है ,
धन तो तन का मैल है ।
तुम यों ही अप-मुक्त हो ,
हुए अभी दल-मुक्त हो ।
लोकप्रियता के लिए ,
न कि सक्रियता के लिए ,

बहुत बुराई में हैं पगे ।

सुगुण— शोभन—

मुखिया— रहने दो उसे ।

चाहो तो तैयार हो ;

तुम इस का पद भार हो

सुगुण— जो कुछ कहिए मैं करूँ ,

किन्तु न जीते जी मरूँ ।

शोभन तो—

मुखिया— बस चुप रहो ;

जो कुछ मैं पूछूँ कहो ।

टले सहज में यह विपद् ,

मिले राज्य में उच्च पद ।

सुगुण— तभी न शोभन—

मुखिया— फिर वही !

वह तुम-सा आतुर नहीं ।

पूछ उसे देखो न तुम ;

अपना-सा लेखो न तुम ।

कुछ न कहेगा वह कभी ,

नहीं समझते तुम अभी ।

मानी है वह एक ही ,

उसका गुण है टेक ही ।

तुमने उससे कुछ कहा

और न उसने यह कहा
कि तुम इसी के सम बनो,
अथवा कुछ ही कम बनो।
वो दल-भेदी सिद्ध कर,
कोटि वचन शर-विद्ध कर,
तुमको वही ठगायगा,
दल से दूर भगायगा।
रहो न तुम भी मौन फिर,
किन्तु सुनेगा कौन फिर ?
वह सबका विश्वस्त है;
मघ का दक्षिण हस्त है।
तब न कहीं के तुम रहे,
बीच धार में ही बहे।
दल का दल की बात कुछ
कहे, तभी है बात कुछ।
सुनो, पास के क्षेत्र हों
और दूर के नेत्र हों।

सुमुख— पर शोभन—

मुखिया— तुम मूढ़ हो;
अनहित पर आरूढ़ हो।

सुमुख— लीजे पकड़ा कान अब,
छोड़ा मैंने ध्यान सब।

कैसे छूटेगी विपद ?
और मिलेगा उच्च पद ?
शोभन—जाने दो इसे ,
कहिए कि मैं करूँ जिसे ।

मुखिया— काम नहीं यह कुछ विकट ,
जाना होगा नृप-निकट ।
वहाँ खड़े रहना तनें ,
निज दल के साक्षी बनें ।
जहाँ साक्ष्य देकर हटे ,
अधिकारी बन कर डटे !

सुमुख— क्या कहना होगा भला ?
रुद्ध न हो जावे गला ?
शोभन—मैं भूला अरे ,
अब भूलूँ तो माँ मरे !

मुखिया— बतला देगा वह सभी
तुम्हें ग्राम-भोजक तभी ।
अभी मिला दूँ मैं, चलो ,
यह न हो कि फिर तुम छलो ?

सुमुख— शपथ मुझे है आप की ,
और सगे निज बाप की ,
पर शोभन—जिह्वा गले ,
अब भूलूँ तो मुँह जले ।

उद्यान का एक भाग

(सुरभि धीरे-धीरे गाती है)

(गीत)

प्रेम करता है तो कर त्याग ,
नहीं तो है वह कोरा राग ।
प्रकट कर चित्त, न अपनी चाह ,
भरम खोदे न मरम की आह ।
सिन्धु-सम रह तू अन्तर्दाह ,
और रह धीर, गभीर अथाह ।
तुझे तुझमें ही तेरी थाग ;
प्रेम करता है तो कर त्याग ।

(सहसा मघ का प्रवेश)

मघ— सुरभि, यह गीत कैसा है ?

(सुरभि चौंकती है)

सुरभि— कहूँ क्या मैं कि ऐसा है ?
सुना था याद हो आया ।

मघ— इसीने क्या इसे गाया ?
श्रवण कर और गाऊँ मैं ,
इसे थोड़ा पढ़ाऊँ मैं ।

(गान)

सिद्धि की आशाओं को जीत
जन्म, तू साधन में ही बीत ।
गगन-सा आप यहाँ तक रीत
कि सब हो तुझमें भरा प्रतीत !
और सब में हो तेरा भाग !
प्रेम करता है तो कर त्याग ।

सुरभि— यही है रीति कहने की ,
यही है रीति रहने की ।
नहीं यह साधना सबकी ,
तदपि आराधना सबकी ।

मघ— सुरभि, अब यह बता मुझको
कि क्या कुछ दुःख है तुझको ?

सुरभि— मुझे ? क्या दुख मुझे ? प्रभुवर ,
तुम्हारी है कृपा जिस पर ।
तुम्हारे भाव चिन्तन कर
सुखी है कौन मुझ-सा पर ?

मघ— बड़ाई क्या करूँ तेरी ?
सहायक तू बड़ी मेरी ।
कि मैं जो भार लेता हूँ
तुझे ही सौंप देता हूँ ।
जहाँ सेवा अपेक्षित है

वहाँ झट तू उपस्थित है।
सनाथाश्रम यहाँ मेरा
बना है वस्तुतः तेरा।
नहीं तू काम से थकती,
विजन-सा है तदपि तकती।
तुझे कुछ सोच निश्चय है;
कि कुछ सङ्कोच निश्चय है।
करूँ वर-खोज मैं, पहले,
कथन जो हो तुझे कह ले।
न तू यों लाज से लचजा,
बचे जिस युक्ति से बचजा।

सुरभि— वृथा मेरे लिये श्रम है,
मुझे अच्छा यही क्रम है।
कुमारी ही रहूँगी मैं,
तदपि कैसे कहूँगी मैं!—
यही भय था बड़ा मुझको,
तदपि कहना पड़ा मुझको।
कहा, हलकी हुई अब मैं;
कहो जो सो करूँ सब मैं।

मघ— किया यह उग्र निश्चय क्यों?
करेगी तू न परिणय क्यों?

सुरभि— क्षमा हो धृष्टता मेरी,

तुम्हारी हूँ चरण-चेरी।
तुम्हीं कह दो कि किस भय से
विमुख तुम आप परिणय से ?

मघ— करूँगा मैं न जो कुछ कह,
करेगी क्या न तू भी वह ?

सुरभि— नहीं निज शक्ति है मुझमें,
तुम्हारी भक्ति है मुझमें।

मघ— विमुख हूँ व्याह से कब मैं ?
करूँगा देखना जब मैं।

सुरभि— करोगे, जानती हूँ यह,—
पिता का जानकर आग्रह;
सुना सब आप मैंने है।
किया यदि पाप मैंने है,
मुझे दो दण्ड कितना ही,
बता दो किन्तु इतना ही—
स्त्रियाँ क्या हेय हैं ऐसी
समझते हो कि तुम जैसी ?

मघ— सुरभि, अन्याय मत कर तू;
न रख यह दोष मुझ पर तू।
स्त्रियाँ हैं देवियाँ मेरी;
न भोग्या हैं, न वे चेरी।
नहीं माँ ध्येय क्या मुझको ?

कि तू ही देय क्या मुझको ?
न तन-सेवा, न मन, सेवा ,
न जीवन और धन-सेवा ,
मुझे है इष्ट जन-सेवा ,
सदा सच्ची भुवन-सेवा ।
न होगी पूर्ण वह तब तक ।
न हो सहधर्मिणी जब तक ।
करूँगा ब्याह मैं इसमें ,
बनूँ सच्चा गृही जिससे ।
चुनेगी तू स्वयं कन्या ,—
कि जैसी आप तू धन्या ।
कहीं यह इष्ट हो तुझको
कि तू मन से वरे मुझको ।
सहज तो कार्य्य अपना यह ,—
सुरभि— अरे फिर आर्य्य, सपना यह !
मघ— न सपना है, न विस्मय है ,
वृथा संशय वृथा भय है ।
समझ ध्रुव सत्य तू इसको ,
कहूँ साक्षी कहे जिसको ?
सुरभि— तरणि तुम हो नभोगामी ,
धरणि की धूलि मैं स्वामी !
तुम्हारी सहचरी जो हो

बड़ी बड़भागिनी सो हो।
रहूँ बस अनुचरी-सम मैं ;
न मानूँगी यही कम मैं।
न छोड़ूँगी चरण ये दो,—
करे कोई वरण ये दो।
न छोड़ूँगी, न छोड़ूँगी !
इन्हीं पर जन्म जोड़ूँगी।

मघ— उठो भद्रे, न कातर हो,
वरा मैंने तुम्हें वर हो।
मुझी-सा तोष तुम पाओ,
करें मिल लोक-हित आओ।

(नेपथ्य में) मरा रे हाय ! मैं जीता !
मरे से हूँ गया-बीता।
शरण किसके कहाँ जाऊँ ?
किसी को देख भी पाऊँ ?

मघ— (चौंककर)
अरे, यह कौन पीड़ित है ?

सुरभि— स्वयं प्राप्त पर-हित है।

मघ— चलो इसको सँभालें हम,

सुरभि— यही व्रत नित्य पालें हम।

(जाकर और देखकर)

मघ— अरे, यह पान्थ है कोई

कि जिसने दृष्टि है खोई ।

सुरभि— नहीं आँसू बहाता यह
रुधिर से है नहाता यह ।

मघ— हुआ क्या आँख में इसको ?

पथिक— पुकारूँ हाय ! अब किसको ?

मघ— पथिक, ठहरो, न घबराओ,
स्वगृह समझो यहाँ आओ ।
रहो, मैं आप आता हूँ ;
तुम्हें निज-संग लाता हूँ ।
कहो, तुमको हुआ यह क्या ?

पथिक— बताऊँ मैं कथा यह क्या !
यहाँ का ग्राम-शासक है
कि हिंसा का उपासक है ।
अभी वह अश्व पर चढ़ कर
कहीं था जा रहा बढ़ कर ।
मिला मैं सामने ज्यों ही
हुआ बस उग्र वह त्यों ही ।
बँधा यह नेत्र था मेरा,—
जिसे है क्रोध ने घेरा ।
न था मैं हाय ! कुछ पाना,
तदपि उसने यही माना !
गया तुमको बता कर यह,—

शगुन बिगड़ा बता कर वह ।
उसीने—हाय ! बेदरदी—
कशा से यह दशा कर दी !
"तुझे जीता न छोड़ूँगा ;
खुली भी आँख फोड़ूँगा ।
अदिन थे आज से तेरे ,
पड़ा तू सामने मेरे ।"
कटी है भौंह, कटि टूटी ,
कदाचित आँख भी फूटी !

सुरभि— हरे, अन्याय ये ऐसे
कहो तो, सह्य हों कैसे ?

मघ— सुरभि आक्षेप रहने दो ;
न अब यह रक्त बहने दो ।
करो उपचार, जल लाओ ।
इन्हें ही ले चलें आओ ।

सुरभि— पथिक, मुझको बहन समझो ,
न अपनी स्थिति गहन समझो ।
(आँचल से रक्त पोंछ कर
आँख देखती है)
कुशल की दैव ने तब भी ,
बची है तारिका अब भी ।
चलो, मेरा सहारा लो ;

अपेक्षित साज सारा लो।

रथिक— रहो कोई, सुखी तुम हो

कि जो पर-दुःख-दुखी तुम हो।

(दोनों दोनों ओर से सहारा देकर पथिक को
उद्यान के भीतर एक घर की ओर
ले जाते हैं)

एकान्त

मध

(गान)

मन, अपने को आप सँभालो ,
कौन कहाँ क्या करता है तुम
इसे न देखो भालो ।
कोई क्रोध-विरोध करे तो
उधर दृष्टि मत डालो ,
जो पथ शोध लिया है तुमने
बस उसका व्रत पालो ।
ढले न कोई तुम पर, सब पर
तुम अपने को ढालो ,
कायर हो, कर्त्तव्य कठिन यदि
किसी युक्ति से टालो ।
मेरा प्रयत्न पूरा
चाहे रहे अधूरा
पर मैं उसे करूँगा ;
सब विघ्न-भय तरूँगा ।
फल हो न हाथ मेरे ,

कर्त्तव्य साथ मेरे।
वैफल्य का वृथा भय,
है कर्म्म-बीज अक्षय।
मेरे अनेक सङ्गी
यदि हैं अनेक रङ्गी
तो भी न मैं टलूँगा,
निज मार्ग पर चलूँगा।
कोई मुझे न माने,
जो हूँ वही न जाने,
तो भी विरत न हूँगा;
सब शान्ति से सहूँगा।
जो हूँ वही रहूँगा,
यह अन्त में कहूँगा—
मैंने स्वधर्म्म पाला,
फिर और क्या कसाला?

(शोभन का प्रवेश)

शोभन, वयस्य, आओ,
क्या वृत्त है, बताओ।

शोभन— मैं और क्या बताऊँ
यदि आज मृत्यु पाऊँ
तो लाज से बचूँ मैं!
किस व्याज से बचूँ मैं?

मघ— यह क्या, व्यथित न हो यों ;
तुम व्यग्र हो कहो क्यों ?

शोभन— गायें गभीर ! सारी
चोरी गई तुम्हारी ।
हमने उन्हें चुराया ,
अति दूर है दुराया ।

मघ— आक्षेप क्यों कहो फिर ?
क्यों तुम अधीर अस्थिर ?
छोड़ो विषाद भारी ,
क्या वे नहीं तुम्हारी ?

शोभन— पितृ-लभ्य पुत्र पावे ,
यह सिद्ध सत्य भावे ,
तो और क्या कहूँ मैं ,
तुम दण्ड दो, सहूँ मैं ।

मघ— दूँगा, अवश्य दूँगा ,
कुछ दण्ड-रूप लूँगा ।
(आलिङ्गन करके)
अन्याय आप पर तुम ,
आक्षेप बाप पर तुम ,
देखो, कभी न करना ;
निर्द्वन्द्व हो विचरना ।
(शोभन का रोदन)

भाई, सहिष्णु हो तुम,
बस आत्म-जिष्णु हो तुम।

शोभन— पर लोग क्या कहेंगे;
क्यों मौन वे रहेंगे?

मघ— अपवाद से डरोगे
तो काम क्या करोगे?

शोभन— अन्याय किन्तु ऐसे
देखूँ समक्ष कैसे?

मघ— कुछ भी उन्हें न लेखो,
निज लक्ष्य मात्र देखो।
राजर्षि एक इन थे,
तप कर रहे कठिन थे।
आई उन्हें डिगाने
रम्भा इसी ठिकाने।
वे काम से न रीझे,
पर क्रोध मान खीझे।
तो भी डिगे सही वे,
थे अर्द्ध निग्रही वे।
सब ओर दृढ़ रहो तुम,
जो हो उसे सहो तुम।

शोभन— सब सह मैं सहूँगा,
कुछ भी नहीं कहूँगा।

पर तुम तनिक विरत हो ,
मन मात्र से निरत हो ;
बस फिर विपक्ष आवे ,
जी भर मुझे सतावे ।

मघ— शोभन, कृतज्ञ हूँ मैं ;
पर धर्म्म त्याग दूँ मैं ?
तुम से यही कहूँ मैं
तो क्या सही कहूँ मैं ?
हम-तुम जुदे नहीं हैं ,
जुग हैं, जहाँ कहीं हैं ।

शोभन— निन्दा नहीं अकेली ,
फूली विरोध-बेली ।
फल गुप्त फल रहे हैं ,
षड्यन्त्र चल रहे हैं ।

मघ— हम आप खायँ मीठे ,
फिर कौन खाय सीठे ?
अब यह विषय रहे विष ।
जो जो कहे, कहे बस ।

शोभन— चिन्ता तुम्हें न भय की ,
अपने किसी विषय की ।
मैं भी पता लगा लूँ ।
सन्देह सब भगा लूँ ।

तब और कुछ कहूँगा ;
धीरज अभी धरूँगा ।
गायें गईं जहाँ हैं
मघ— सानन्द तो वहाँ हैं ?
शोभन— मैं आप देख आऊँ
फिर और सब बताऊँ ।
रहना सजग सुमुख से ,
जाओ, वयस्य सुख से ।
मघ— (शोभन जाता है)
जिस तात का तनय यह
चाहे करे अनय वह
है वन्दनीय फिर भी ,
अभिनन्दनीय फिर भी ।
बाहर गये पिता हैं ,
मां धेनु-चिन्तिता हैं ।
यह सब कहीं सुनेंगी
तो शोश वे धुनेंगी ।
दीखे न क्यों अँधेरा ,
बश क्या परन्तु मेरा ?
जो आप कर रहा मैं
क्या पाप कर रहा मैं !
सन्तोष यह करें वे

तो धैर्य्य ही धरें वे।
पर अब विवाह करना
है दुःख में उतरना।
क्या ठीक है कि कब क्या ?
यों ही रहूँ न तब क्या ?
पर क्या सुरभि कहेगी ?
कैसे कहाँ रहेगी ?
जाऊँ, उसे मनाऊँ ;
अपनी दशा जनाऊँ।

(सुमुख आता है)

सुमुख— बैठे अहो ! यहाँ तुम !
झटपट चलो वहाँ तुम।
घर जल रहा तुम्हारा,
वह दूर धूम-धारा !
माँ व्यग्र हो रही हैं,
निरुपाय रो रही हैं।
जन यत्न कर रहे हैं,
भर नीर झर रहे हैं।
पर हानि क्या रुकी है ?
भर पूर हो चुकी है।
अनुमान है न लेखा,
मुझसे गया न देखा।

मघ—

आया तुम्हें बुलाने,
तुम हो यहाँ भुलाने।
घर क्या स्वयं जलूँगा
फिर भी न मैं टलूँगा।
जब एक दिन मरूँगा
तब क्यों कभी टरूँगा?

(प्रस्थान)

सुमुख—

यह आत्म-तेज कैसा?
भैया-सखा न ऐसा!

मेंड़

कुछ लोग

पहला— यह कैसा अन्याय !
दूसरा— पर है कौन उपाय ?
तीसरा— त्यागो बस यह राज्य ।
चौथा— सचमुच है यह त्याज्य ।
पाँचवाँ— पर अपना घर-बार ?
कृषि एवं व्यापार ?
पहला— सब हैं अपने बाद ,
रक्खो इसको याद ।
दूसरा— जन्मभूमि यह हाय !
तीसरा— तो भोगो अन्याय !
दूसरा— करें न कुछ प्रतिकार ?
चौथा— क्या तुम हो तैयार ?
तीसरा— लूँगा मघ का मार्ग ।
पहला— वही अनघ का मार्ग ।
दूसरा— हूँ मैं भी सन्नद्ध ।
पाँचवाँ— होगे तुम भी वद्ध !

पहला— इसकी क्या परवाह ?
दूसरा— क्या साहस है वाह !
तीसरा— साहस की क्या बात ?
कौन सहे उत्पात ?
पाँचवाँ— सचमुच मघ निर्दोष ,
किन्तु दैव का रोष !
चोरी, आग प्रचण्ड ,
अब कारागृह-दण्ड !
पहला— किन्तु धन्य वह वीर ,
हुआ न तनिक अधीर ।
चौथा— सैनिक हैं सब बीस ;
पाँचवाँ— जँचते हैं चालीस ।
चौथा— पहने हैं क्या वस्त्र ,
पाँचवाँ— लिए सभी हैं शस्त्र ।
चौथा— हैं कैसे विकराल ,
पाँचवाँ— जैसे हों सब काल ।
चौथा— अश्वारूढ़ अशेष ,
पाँचवाँ— सब के सब सम-वेश ।
चौथा— टापों का वह नाद ,
पाँचवाँ— भय-भेरी का वाद ।
चौथा— उड़ी गाँव की धूल !
पाँचवाँ— बहे यथा वातूल ।

चौथा— लगा ग्रहण-सा झंप
पाँचवाँ— अब भी है हृतकम्प !
पहला— पर मघ को है धन्य ,
यह सब समझ अगण्य ,
दल-युत वह द्युतिवन्त ,
वन्दी बना तुरन्त ।
तीसरा— अचल पूर्व-सा ठीक ,
सौम्य शान्त निर्भीक ।
दूसरा— धृत-जन थे तेतीस ।
चौथा— किन्तु रहे अब तीस ।
पाँचवाँ— छूट गये हैं तीन ।
पहला— सुमुख आदि अति हीन ।
दूसरा— छूटे कैसे हाल ?
चौथा— दे-लेकर कुछ माल ।
दूसरा— अटल रहे सब अन्य ।
पहला— पिया उन्होंने स्तन्य ।
तीसरा— शोभन का क्या हाल ?
पाँचवाँ— वह है उसका लाल
जिसका इसमें योग ,
मिले और भी लोग ।
चौथा— शोभन तो है गुप्त ,
कहीं मौज से सुप्त ।

तीसरा— किन्तु छिपा क्या सोच ?
दूसरा— कुछ लज्जा, सङ्कोच ।
पहला— अब फिर अत्याचार
होंगे इसी प्रकार ।
तीसरा— मघ ने मानों आप
मेटे थे सब पाप ।
चौथा— पर है कौन उपाय ?
पाँचवाँ— नृपति करें सो न्याय ।
पहला— न्याय यही यदि हाय !
तो क्या है अन्याय ?
चौथा— पर नृप को क्या ज्ञात,
क्या है इनकी बात ।
दूसरा— चलो कहें कुछ लोग ।
पाँचवाँ— देगा कौन सुयोग ?
चौथा— अधिकारी ये दुष्ट
होंगे उलटे रुष्ट ।
पहला— तो फिर किसका मोह ?
ठानेंगे विद्रोह !
पाँचवाँ— भाई, धीरे बोल ;
यों ही मुँह मत खोल ।
चौथा— रहे अभी यह बात,
दूसरा— होने दो अब रात ।

होगा तभी विचार,
सोचेंगे प्रतिकार।

चौथा— रहो न अब एकत्र।

पाँचवाँ— संकट हैं सर्वत्र।

दग्ध-गृह

मघ की माँ और सुरभि।

माँ— चोरी, फिर गृह-दाह साथ ही यह हुआ !
मघ से ऐसा कौन दोष दुस्सह हुआ ?
क्या उसके निष्काम कर्म का फल यही ?
मैं अभागिनी हाय ! आज भी जी रही !

सुरभि— माँ, पत्थर का हृदय करो कातर न हो ;
जो कुछ दे भगवान, धैर्य्य-पूर्वक सहो।
जब हों कर्म्म सकाम, फलाफल हैं तभी ;
डिगते हैं क्या धीर मृत्यु से भी कभी ?
साधन-पथ है कठिन, विघ्न-मय श्रेय है ;
पर पा सकता कभी उसे क्या प्रेय है ?
फिर भी कोई विश्व-विधाता है कहीं
तो ऐसा अन्याय देख सकता नहीं।
रह न सकेगा किये बिना प्रतिकार वह ;
मुझको है विश्वास अटल इस बार यह।
यह मेरा विश्वास नहीं जो ठीक है
तो फिर सारा शास्त्र-समूह अलीक है।
माँ, तुमको भी नहीं यही विश्वास क्या ?

निष्फल होंगे अयुत आर्तनिश्वास क्या ?
माँ— भोजक के घर एक वार जाऊँ कहीं
तो क्या उसको वहाँ देख पाऊँ नहीं ?
सुरभि— जाने दूँगी किन्तु न मैं तुमको वहाँ ;
जाने में अपमान समझती हूँ जहाँ ।
माँ— बेटी, क्या सम्मान पुत्र से है बड़ा ?
सुरभि— हाँ ! माँ, यह भी आज मुझे कहना पड़ा ।
छोड़ो निज सम्मान भले ही तुम अभी ,
पर उनका अपमान न होने दो कभी ।
माँ— तो बेटी, क्या करूँ और जाऊँ कहाँ ?
सुरभि— हैं उनके प्रिय कर्म और आश्रम जहाँ ।
माँ— वहीं चलूँगी, यहाँ शेष ही क्या रहा ?
सुरभि— माँ, तुमने ही नहीं विषम सङ्कट सहा ,
माताएँ बहु यहाँ और भी रो रहीं ;
सम-दुःखिनी अनेक तुम्हारी हो रहीं ।
माँ— यही सोच तो मुझे और भी खल रहा ,
सुरभि— पर यदि तुम हो विकल उन्हें क्या बल रहा
माँ— तो अब मब से मिलूँ न मैं जाकर वहाँ ?
आने देगा कौन उसे बेटो, यहाँ !
विस्मय है बस यही कि बन्दी-वेश में ,
लाये क्यों वे उन्हें न दग्ध-निवेश में ?
सुरभि— जिसमें उनको देख और भी तुम जलो !

और हँसे वे—अरे, देख लो यह चलो ।

(आगे मुखिया और पीछे बन्दी मघ
दीख पड़ते हैं)

मुखिया—मघ की माँ सन्देह तुम्हें मुझ पर रहे ,
जो कहना हो जिसे क्यों न मुझसे कहे ,
पर मैं मघ को यहाँ, जिस तरह बन पड़ा ,
लाया; मिल लो और करो अब जी कड़ा ।
खेद है कि सब और यत्न निष्फल गये ,
कर्कश बन्धन छुड़ा सका मघ के न ये ।

सुरभि—प्रमुख महाशय बड़ी कृपा है आपकी ;
सुध रखते हैं आप दीन-सन्ताप की ।

मघ— पद-रज दो माँ, हाथ बँधे हैं दास के ;
छिपा न पावें भाव दूर के पास के ।
तुम मेरी माँ और तुम्हारा लाल मैं ;
कहूँ सदा के लिए और क्या बात मैं ।

माँ— मैं भी तुझसा नहीं चाहती अन्य कुछ —

सुरभि— इससे बढ़कर नहीं दूसरा धन्य कुछ ।

माँ— अच्छा बेटा, दण्ड मिले सो तुम सहो ;
अपने प्रण पर अटल सदा यों ही रहो ।
औरों के ही लिए जगत में तुम जिये ,
और मरे तो उन्हीं अभागों के लिए :
पुरस्कार की जगह दण्ड तुमको मिला ,

क्या विस्मय फिर कि जो हृदय मेरा हिला ?
तुम्हें न हो, पर मुझे इसी का खेद है,
कौन जानता मौन भाग्य का भेद है !
गहने होते जहाँ, वहाँ बन्धन कड़े !
फिर भी तुम ढीले न पड़े, अविचल खड़े !!
मेरी कोख कृतार्थ हुई जनकर तुम्हें,
अब हो कोई पाप-पतित हनकर तुम्हें !
नहीं मुझे ही पुत्रशोक सहना पड़ा ;
वहुतों को है इसी भाँति रहना पड़ा।
मुझको तो है गर्व तुम्हारे कर्म पर,
मेरा सुत वलिदान हुआ है धर्म्म पर।
माना दारुण शोक सहूँगी वत्स, मैं,
पर गौरव के साथ रहूँगी वत्स मैं।
सबको है यह ज्ञात कि तुम निर्दोष हो ;
मेरे लुटते हुए सुकृत के कोष हो !

(सिर झुका कर रोना)

मुखिया—दोषादोष विचार भूप का कार्य्य है।
सुरभि— पर उसमें भी न्याय-बुद्धि अनिवार्य्य है।
मुखिया—राजा जो कुछ करे वही तो नीति है ?
सुरभि— और प्रजा जो करे वही अनरीति है ?
मुखिया—सुरभि, राज्य की नीति जिसे भावे नहीं
राज्य छोड़ वह दूर चला जावे कहीं।

अथवा यदि वह वहीं जान कर भी रहे
तो जो कुछ आ पड़े, धैर्य-पूर्वक सहे ।
सुरभि— प्रमुख महाशय, जाय प्रजा ही क्यों कहीं ?
ऐसा नृप ही जाय राज्य से क्यों नहीं ?
स्वयं प्रजा के सदाचार जाने न जो ,
अथवा उसके धर्म-कर्म माने न जो ।
मुखिया—तुम लड़की हो अभी, करो बातें न ये ।
सुरभि— होने दीजे आप वृद्ध बातें न ये ।
मघ— लौट न आवें पूज्य पिता जब तक यहाँ ,
तुम पर माँ का भार सुरभि तब तक यहाँ ।
कह देना तुम यही प्रणति युत तात से—
टला तुम्हारा सुत न किसी भी बात से ।
उसने ऐसा किया नहीं कुछ भी कहीं
जो कि तुम्हारे पुत्र-योग्य होता नहीं ।
सुरभि— कह दूँगी; फिर उन्हें इन्हें भी क्लेश क्या ?
बतला दो अब कि है मुझे आदेश क्या ?
मघ— तुमसे मैं क्या कहूँ—सदैव सुखी रहो ।
सुरभि— यह तो है अभिशाप, अहो ऐसा न हो !
जो सब कुछ कर रहे दूसरे सुख के लिए ,
सुख का यह आशीष उन्हीं को चाहिए ।
इष्ट मुझे है यही—सहूँ सब दाह मैं ,
चैन न पाऊँ, कहूँ न फिर भी आह मैं ।

विश्व-वेदना विकल करे मुझको सदा ,
रक्खे सजग सजीव आर्ति या आपदा !
मेरा रोदन एक गूँजता गीत हो ,
जीवन ज्वलित कृशानु-समान पुनीत हो !
मनुष्यत्व से हमें गिरादे जो कभी
ऐसे सुख को लात मारती हूँ अभी !

मुखिया—क्या पागल हो गई अहो यह बालिका ?
मघ— सुरभि शान्त हो, तुम मेरी व्रत-पालिका ।

कारागार

ग्राम-भोजक की स्त्री

स्त्री— निविड़ तम छाया है सब ओर ;
श्वान ही करते हैं अब शोर ।
दीखती है ऊपर से शान्ति ,
किन्तु भीतर है कैसी क्रान्ति !
भरा है भय-विषाद से ग्राम ;
किसे है अब भी यह विश्राम ?
रो रहे हैं कितने परिवार ?
शान्त है फिर भी कारागार !
बद्ध जन सबके सब निर्दोष ,
तदपि है उन्हें न भय या रोष ।
नहीं सब की माँ आज अधीर—
रो रही मातृभूमि भर नीर !
इधर था भोज और आमोद ,
यहाँ रोदन हा ! कहाँ विनोद !
उड़ा है मद्य मांस भरपूर ;
पड़े सब बेसुध मद से चूर ।
जानती नहीं इसे मैं आप

पुण्य करती हूँ या यह पाप ?
किन्तु यदि फल होगा दुर्द्धर्ष
उसे भोगूँगी स्वयं सहर्ष।

(कारा-कपाट खोल कर)

यही है वह योगी अवधूत ,—
पूत जननी का एक सपूत ।
बद्ध भी यह मानों स्वच्छन्द
पा रहा है सन्तोषानन्द ।
इधर देखो, हे बन्दी वीर।
शान्त क्यों हो तुम पञ्जर-कीर !
काल सिर पर हो रहा प्रतीत ,
तदपि तुम नहीं तनिक भी भीत !

मघ— सत्य स्वाभाविक है जो काल
देवि, क्यों समझूँ उसे कराल ?
मेटता है वह तीनों ताप ,
यहाँ इस समय कौन हैं आप ?

स्त्री— कौन हूँ, करो तुम्हीं अनुमान ?

मघ— आप माँ हैं, मैं हूँ सन्तान !

स्त्री— तुम्हारी माँ होना क्या खेल ?
हृदय पर झेल रही जो शेल ।
ग्राम-भोजक की गृहिणी मात्र
मुझे समझो तुम सौम्य, सुपात्र ।

तदपि अब तक थी निस्सन्तान ,
दिया तुमने मुझको वह दान ।
तुम्हारे सहचर-गण संयुक्त
तुम्हें करने आई हूँ मुक्त ।
उठो झट, करो यहाँ न विलम्ब ,
मघ— फलेगा इसका फल क्या अम्ब !
स्त्री— मधुर मृदु हो वह या कटु क्रूर ,
उसे भोगूँगी मैं भरपूर ।
मघ— किन्तु अनुचित है ऐसा मोह ,
आप जो करें स्वामि-विद्रोह ।
स्त्री— इष्ट है मुझे नरक-संताप ,
घटे उनका अपना कुछ पाप ।
मघ— हमीं हों यदि पापी पाषण्ड
न पावें तो क्यों समुचित दण्ड ?
स्त्री— मनुज अपनी मति के अनुसार
किया करता है सभी विचार ।
तुम्हारे सदय हृदय की शुद्धि
कह रही मुझसे मेरी बुद्धि ।
मघ— आप अपना निश्चित मत, सोच ,
भले ही कहें बिना सङ्कोच ।
आपको नहीं किन्तु अधिकार
कि खोलें मेरा कारा-द्वार ।

स्त्री— कहूँ सो करूँ नहीं मैं सिद्ध,
मानती हूँ मैं इसे निषिद्ध।
मघ— किन्तु यह है चोरी का काम।
स्त्री— तदपि यदि अच्छा हो परिणाम?
मघ— लिया मैंने परिणाम विचार,—
पुनर्बन्धन—फिर कारागार।
न हूँगा मैं छिपने को मुक्त;
रहूँगा व्रत में ही उद्युक्त।
और फिर धृत हूँगा तत्काल;
छूटने से क्या होगा हाल?
स्त्री— विपुल है वसुधा का विस्तार;
चले जाओ अन्यत्र उदार।
जहाँ पर करे न राज्य निरोध,
न ठाने कोई वैर-विरोध।
वहाँ जाकर पालो निज धर्म्म,
करो लोकोपकार-मय कर्म्म।
मघ— मौत टालूँ अपनी इस भाँति?
किन्तु माँ भागूँ मैं किस भाँति?
अपेक्षा है मेरी इस ठौर,
कहो, फिर जाऊँ मैं किस ठौर?
फेर लूँ जन्मभूमि से नेत्र?
जहाँ है मेरा कर्म्म-क्षेत्र।

लगाकर मैं विदेश पर कान
करूँ अनसुना स्वदेशाह्वान ?
स्त्री— तुम्हें भी है क्या देश-विदेश ?
मघ— आपका है यह न्याय-निदेश ।
किन्तु है मेरा देश विपन्न ,
विकृत बहु दोषों से आच्छन्न ।
इसीसे उस पर इतना लक्ष्य ,
रुग्ण जन ही है पहले रक्ष्य ।
नहीं कर सकता यद्यपि त्राण ,
किन्तु दे सकता हूँ मैं प्राण ।
न होगा निष्फल यह बलिदान ;
क्षमा करिए इतना अभिमान ।
स्त्री— तुम्हारी बातें सुनकर खीझ
और होती है मुझको रीझ ।
मघ— पुत्र हूँ मैं प्रिय किन्तु अबाध्य !
स्त्री— नहीं सचमुच तुम मेरे साध्य ।
बनूँ तब मैं अब निपट निराश ,
हार बन जाय तुम्हारा पाश ।
(मघ मस्तक झुकाता है)

अमोघ

अमोघ— दुःख भी सुख-सा भ्रमण का भोग्य है ;
नित्य नव अनुभव, नया आरोग्य है।
देख ली मघ-योग्य कन्याएँ कई ,
रीतियाँ जानी अनेक नई नई।
और मैंने तीर्थ-सेवन भी किया ,
जो बना सो दान श्रद्धा से दिया।
किन्तु फिर भी गेह-चिन्ता है मुझे ,
प्राण अब भी हैं विशेष बुझे-बुझे।
व्याह कर मघ का उसे गृह-भार दूँ
और वाणप्रस्थ का व्रत धार लूँ।
किन्तु अब जब आ गया इस ठौर मैं
घूम लूँ यह राजधानी और मैं।
राज-दर्शन तो भला होंगे कहाँ ?
कुछ अपेक्षा भी नहीं उनकी यहाँ।
राज्य में छाया महा मद-मोह है ,
कुछ कहो तो बस वही विद्रोह है।
(एक जन से)
सुजन, सुनिए मैं प्रवासी हूँ यहाँ ;

योग्य पथिकागार मैं खोजूँ कहाँ ?

जन— सौम्य, सज्जन, वह यहाँ से पास है,
नाम उसका विदित नित्य-निवास है।
श्रीमती रानी हमारी पालिनी
हैं दया की मूर्ति सब गुणशालिनी।
वह उन्हीं की ओर से निर्मित हुआ;
आप ऐसों का अपरिमित हित हुआ।
और क्या उसका पता दूँ आपको,
आइए, मैं ही बता दूँ आपको।

अमोघ— क्या इधर ही आपका गन्तव्य है ?

जन— राजपथ पर ही बना वह भव्य है।
मैं वहीं से न्याय-मन्दिर जा रहा,
अब नृपागम का समय भी आ रहा।

अमोघ— देखते हैं राज-काज नरेश क्या ?
आह ! मेरी बात का उद्देश क्या ?
राज-काज न भूप देखेंगे भला
तो उसे क्या देखने मैं हूँ चला ?

जन— अति चतुर हैं आप, पर यह बात है—
भूप के मन में हुआ प्रतिघात है।
दृष्टि अब सब ओर वे देने लगे;
लोक-रञ्जन में सुरुचि लेने लगे।
आज तो विद्रोहियों का न्याय है,

दर्शकों का जुड़ रहा समुदाय है।
तीस जन वन्दी युवक लाये गये
जो कि राजद्रोह-रत पाये गये।
पर मिटा विस्मय नहीं मेरा अभी,
भद्र-जन से दीखते हैं वे सभी।

अमोघ— भद्र-जन बन जायँ विद्रोही जहाँ
गूढ़ कारण कुछ-न कुछ होगा वहाँ।
क्रान्तिकारी ये कहाँ बाँधे गये?

जन— दूर मचलग्राम में धाँधे गये।

अमोघ— हाय! मचलग्राम मेरा ग्राम है।

जन— मुख्य जन का नाम—
(सोचकर)
हाँ, मघ नाम है।

अमोघ— हा! (मूर्च्छा)

जन— अरे, यह जन गिरा क्यों व्यस्त हो?
हे पथिक, आश्वस्त हो, आश्वस्त हो!

अमोघ— दण्ड्य हूँ हे भद्र! मैं, पकड़ो मुझे;
हूँ उसी मघ का पिता, जकड़ो मुझे।
किन्तु मघ पर यह अनृत आरोप है?
कुछ नहीं, यह क्रूर विधि का कोप है!

जन— सत्य है यह तो सुजन, धीरज धरो,
शीघ्र आओ, अब न देर यहाँ करो।

न्याय-सभा

(न्यायासन पर मगधराज, बन्दी मघ, आदिक, ग्राम-भोजक मुखिया और दर्शक जन-समूह)

मगधराज—द्रोही, तुम पर गये मत्त हाथी जो हूले
तुम्हें मारना कहो सभी वे कैसे भूले ?
क्या तुम कोई मन्त्र जानते हो, बतलाओ ?
मारण से भी विविध यत्न हैं, भूल न जाओ ।

मघ— देव, काल-गति भला कहीं परतन्त्र नहीं है ?
हमें किसी से द्रोह नहीं, यह मन्त्र यही है ।

मगधराज—द्रोह नहीं ! बस करो न बातें भूली-भूली :
देता हूँ मैं तुम्हें दण्ड की सीमा शूली ।

(भैरवी रूपिणी सुरभि का प्रवेश)

सुरभि— महाराज, धिक्कार तुम्हें धिक्कार तुम्हें है !
न्यायासन का नहीं तनिक अधिकार तुम्हें है !!

(सैनिकों द्वारा सुरभि का घेरा जाना)

सुरभि— (सैनिकों से)
कुत्तो, मुझको चीर-फाड़ खाओ तुम चाहे,
किन्तु तुम्हारे निठुर नृपति को कौन सराहे ?

(शीघ्रता से रानी का प्रवेश)

रानी— हट जाओ हे शूर, न छेड़ो इस बाला को ;
शान्त करो भगवान, शाप की इस ज्वाला को !

(सैनिक हट जाते हैं)

भद्रे न हो, अधीर, न्याय का समय अभी है ;
अवगत मुझको हुआ अभी वृत्तान्त सभी है ।
तू ही है वह शुभा सुरभि सबके मन भाई ?
आँधी-सी जो यहाँ दूर से दौड़ी आई ।
क्षतच्छिन्न हो गये सुकोमल पद-तल तेरे ,
पहुँची सूचक-सङ्ग तदपि तू यहाँ सवेरे ?
टूटा वह, आ रही यहाँ थी तू जिस रथ में ,
साहस टूटा किन्तु न फिर भी तेरा पथ में ।

सुरभि— आप कौन हैं ? आप कदाचित् नृप की रानी ,
कहती है सब प्रजा जिन्हें निज-भूप-भुलानी ।
आप सुन्दरी, सती, गुणवती हों कितनी ही ,
पर कृतार्थता नारि-जाति की क्या इतनी ही ?

रानी— मुझको दे अभिशाप किन्तु भद्रे, सुन तब भी ,
महाराज की भूल सँभल सकती है अब भी ।

राजा— क्या प्रमाण है कि ये सभी निर्दोष मनुज हैं ?

सुरभि— क्या प्रमाण है कि ये सभी दुर्दोष दनुज हैं ?

राजा— मैं प्रमाण हूँ आप, कहूँ यदि तो फिर बोलो ?

सुरभि— तो तुम साक्षी मात्र, न्याय का दण्ड न तोलो ।

दूँगी मैं भी साक्ष्य कि हैं निर्दोष सभी ये ;
करते कोई नहीं किसी का अहित कभी ये ।
उलटा सबका भला चाहते हैं, करते हैं ,
पर-हितार्थ ये नहीं मृत्यु से भी डरते हैं ।
केवल मैं ही नहीं, साक्ष्य देंगे सुर सारे ;
बोल उठेंगे एक साथ रवि, शशि, ग्रह, तारे ।
महाराज, यह बात न भूले कोई भूपर—
कि है और भी एक शक्ति हम सबके ऊपर ।

(यथा-क्रम मघादिक और ग्राम-भोजक एवं मुखिया आदि की ओर आँखों से निर्देश करते करते)

सच्चे-झूठे, भले-बुरे, न्यायी-अन्यायी ,
होंगे उसके निकट स्वकर्मों के सब दायी ।

रानी— (राजा के प्रति)

छले गये हैं प्रभो. आप, क्षण धीरज धरिए ,
भोजकजी, अब रङ्गभूमि में आप उतरिए ।
कहिए, क्या अपराध किया है इन लोगों ने ?
देखा वह अपराध साथ ही किन लोगों ने ?

भोजक— देवि, इन्होंने दिये गृहस्थों के घर भरके ,
जिनमें जो ये यहाँ लगे थे सो सब करके ।
अपराधी अब दण्ड नहीं पाने पाते हैं ,
उन सबको ये यहाँ प्रेम से अपनाते हैं ।

जो मद्यप थे, भक्ति-सुधा वे अब पीते हैं।
चोर महाजन हुए, निठल्ले बने सुकर्मी ;
जो थे ज्वारी धूर्त, बने हैं सच्चे धर्मी।
पृथ्वी पर यह सत्य स्वयं ही सिद्ध न होगा
तो फिर कोई धर्म्म कदापि निषिद्ध न होगा।

(राजा के अङ्गरक्षक के रूप में पहले दृश्य वाले चार चोर सामने आते हैं)

एक चोर—महाराज, अपराध क्षमा हो, हम हैं चेरे ;
हम चारों ही किन्तु चोर हैं और लुटेरे।
मघ के वे उपकार भूल सकते हम कब हैं,
जिससे प्रभु के आज अङ्ग-रक्षक हम सब हैं।
अहो अनघ मघ, याद करो, कटि-बन्ध तुम्हारा
बना आज यह पूज्य हृदय का हार हमारा।
हम चारों ने उसे बराबर लेकर पहना,
सोने का यह नहीं, जागने का है गहना।
जिस दिन हम पर दया दृष्टि तुमने दिखलाई
उस दिन से अति घृणा हमें अपने पर आई।
हम अवसर को खोज रहे थे, मिला अचानक ;
मृगया में वन गया एक दिन यों ही मानक।

राजा— क्या तुम सब थे चोर, जिन्होंने मुझे उबारा!
जब मुझ पर उस बार सिंह ने धावा मारा।

मघ— इसी भाँति हे बन्धु, विपद निज सब की टालो ;

स्वेच्छाचारी साम्यभाव पर ये मरते हैं,
शान्ति-भङ्ग कर आप शान्ति का दम भरते हैं।
कर मिलना भी कठिन हो रहा इनके मारे,
फिरते हैं स्वच्छन्द चोर, डाकू, हत्यारे।
साक्षी मुखिया सुमुख आदि हैं इनके दल के।
रानी— कहो सुमुख, जो तुम्हें ज्ञात हो, किन्तु सँभल के।
सुमुख— (सिर खुजलाता हुआ)
देवि, क्षमा हो भूल गया जो याद किया था;
क्यों मुखिया ने मुझे हाय! यह भार दिया था?
शोभन को तो छिपा दिया है कहाँ, न जानें,
ठीक कहा है, कभी कुटिल की बात न मानें।
सुरभि— सिद्ध होगया कि है अनृत अभियोग सभी यह।
आँखें हों तो चलो दिखा दूँ और अभी यह—
किये इन्होंने पुण्यकार्य हैं कैसे कैसे,
समझेंगे क्या उन्हें स्वार्थपर ऐसे ऐसे?
दान किया उद्यान, अनाथागार बनाये,
कितने कूप-तड़ाग सँभाले, खने, खनाये;
मरते-मरते अयुत अभागे जीव बचाये;
फिर भी इन पर जाल गये ये आज रचाये!
गायें हर ली गईं और घर भी जलवाया;
यह मिथ्या अभियोग अन्त में है चलवाया।
अब भी कितने दीन दुखी इनसे जीते हैं,

जो मद्यप थे, भक्ति-सुधा वे अब पीते हैं।
चोर महाजन हुए, निठल्ले बने सुकर्मी ;
जो थे ज्वारी धूर्त, बने हैं सच्चे धर्मी।
पृथ्वी पर यह सत्य स्वयं ही सिद्ध न होगा
तो फिर कोई कर्म कदापि निषिद्ध न होगा।

(राजा के अङ्गरक्षक के रूप में पहले हदय वाले
चार चोर सामने आते हैं)

एक चोर—महाराज, अपराध क्षमा हो, हम हैं चेरे ;
हम चारों ही किन्तु चोर हैं और लुटेरे।
मघ के वे उपकार भूल सकते हम कब हैं,
जिससे प्रभु के आज अङ्ग-रक्षक हम सब हैं।
अहो अनघ मघ, याद करो, कटि-बन्ध तुम्हारा
बना आज यह पूज्य हृदय का हार हमारा।
हम चारों ने उसे बराबर लेकर पहना,
सोने का यह नहीं, जागने का है गहना।
जिस दिन हम पर दया दृष्टि तुमने दिखलाई
उस दिन से अति घृणा हमें अपने पर आई।
हम अवसर को खोज रहे थे, मिला अचानक ;
मृगया में बन गया एक दिन यों ही पालक।

राजा— क्या तुम सब थे चोर, जिन्होंने मुझे उबारा !
जब मुझ पर उस पार सिंह ने छापा मारा।

मघ— इसी भाँति हे बन्धु, विपद निज नृप की टालो ;

मरने को हैं सभी, धर्म्म मर कर भी पालो ।

(पहले दृश्य वाले साधक का प्रवेश)

साधक— मघ ने जिसका त्राण किया था इन चोरों से ,
पड़ कर अपने आप विपद में सब ओरों से ;
महाराज, मैं वही अकर्म्मा कुण्ठित जन हूँ ;
किन्तु शीघ्र ही कमा चुका मैं इतना धन हूँ ,—
दूँ मैं मघ की तौल आप माँगें यदि मोती ,
मैं क्या था यदि कृपा न इनकी मुझ पर होती ।

मघ— सुखी हुआ मैं सुजन; समुन्नति देख तुम्हारी ;
उद्यम है तो सुलभ सम्पदाएँ हैं सारी ।

(मघ पर प्रहार करने वाले सुर का प्रवेश)

सुर— देवि, आपके अतिथि साधुओं का सेवक मैं ,
हूँ यथार्थ में किन्तु हंस-रूपी खल वक मैं ।
मैंने मघ का व्यर्थ एक दिन प्राण लिया था ,
मघ ने मेरा किन्तु कृपा कर त्राण किया था ।
हो सकता क्या कभी उऋण इनसे मैं पापी ?
मुझ-सा कोई और न था उस समय सुरापी ।

सुरभि— किसने तुमसे कहा था कि तुम इनको मारो ?

मघ— प्रतिहिंसा-वश सुरभि, हाय ! सौजन्य न हारो ,
सुर ने जो कुछ किया सुरा के वश में होकर ;
साहस कैसा किया तुम्हीं ने सुध-बुध खोकर ?

सुरभि— महाराज, विद्रोह यही है, सुनी कीजे ।

(शोभन का प्रवेश)

शोभन— मुझको भी सम्मिलित दण्ड में इनके कीजे ।
जब ये पकड़े गये, न क्या उस समय वहाँ मैं ;
अनुगामी हूँ, इसी हेतु आ गया यहाँ मैं ।

मघ— शोभन, तुम आ गये, कहो कैसी हैं गायें ?
आः ! जाने दो, इधर खड़े हो मेरे दायें ।

सुरभि— महाराज, विद्रोह यही है, शूली दीजे ।
अभियोक्ता हैं आप, आपही निर्णय कीजे ।

मघ— सुरभि, शान्त हो, कहाँ गई वह क्षमा तुम्हारी ?
क्या जीवन, क्या मरण, तुम्हें है भय क्यों भारी ?

मुखिया— यह शोभन हो गया आज सचमुच उन्मादी ।

रानी— चुप रह पामर, क्रूर, कुटिल, खल, मिथ्यावादी ।

मघ— देवि, पिता हैं प्रमुख महाशय इन शोभन के ।

रानी— कोई हों पर कृत्य क्षम्य क्या ऐसे जन के ?
अच्छा, ठहरो, कहाँ गुप्तचर सूचक मेरा ?

(सूचक का प्रवेश)

सूचक— प्रस्तुत है यह दास राज-चरणों का चेरा ।

मघ— एँ, यह तो है वही आँख फूटी थी जिसकी !

सुरभि— पहुँची जो मैं वहाँ दशा सो है बस इनकी ।
भोजक फिर तो चतुर ग्राम-भोजक ही ठहरा,
कोई निकल न सके, गाँव पर बैठा पहरा !

मघ— मेरा अनुचित पक्षपात यह करे न, मद है ।

रानी— भद्र, तुम्हारा व्यर्थ सभी ऐसा संशय है।
विवरण लिख कर मुझे दिया है उसने जैसा ;
जाने दो वह रहे अभी वैसा का वैसा।
जो कुछ यह हो चुका उसीसे सिद्ध हुआ सब ,
केवल निज अभियोग उपस्थित कर सूचक, अब।

सूचक— नहीं आप ही प्रभो, ग्राम-भोजक है पापी ,
महा सुरापी, लुब्ध, अकारण पर-सन्तापी।
देवी ने आदेश दिया था मुझे कि जाऊँ
देखूँ मैं जो बात जहाँ सो यहाँ बताऊँ।
इस नृशंस ने मुझे अकारण इतना मारा
मर जाता मैं कहीं सुरभि देती न सहारा।
इसने तो थी हाय! आँख ही मेरी फोड़ी ,
किन्तु इन्होंने वही नई-सी करके जोड़ी।
व्रण मिट गया, परन्तु चिन्ह रह गया सदा को ,
देव, और क्या कहूँ हाय! मैं उस विपदा को।

राजा— बस रहने दो, दिया गया मुझको भी धोखा ;
किन्तु अन्त में खुला सत्य का आप झरोखा।

सूचक— देव, राजविद्रोह दूर है यह भय-दायक ,
उलटे हैं ये सभी राज-कर्तव्य सहायक।

रानी— स्वयं सिद्ध हो चुका आज यह कि मघ अनघ हैं।

जनता— निश्चय मघ हैं अनघ, अनघ, पहले फिर मघ हैं।

राजा— क्षमा करो हे भद्र, तुम्हें अति कष्ट हुआ है ,

पर मेरा भ्रम आज यहाँ सुस्पष्ट हुआ है।
(मघ का बन्धन खोलना)

मघ— देव, परम सौभाग्य आज इस जन-सेवी का;
दर्शन मुझको मिला इसी मिष इस देवी का।
इनके रहते हुए राज्य में किसको भय हो?
प्रजा-पालिनी दयामयी देवी की जय हो।

जनता— जय हो!
(मघ के पिता का प्रवेश)

अमोघ— जय हो।

मघ— आह पिता! तुम यहाँ कहाँ से?

अमोघ— ले आया है वत्स, मुझे संयोग जहाँ से।
(राजा की ओर)
एक मात्र है पुत्र यही मेरा हे स्वामी!

राजा— होंगे शत शत अमृत-पुत्र इसके अनुगामी।

रानी— और तुम्हारी पुत्र-वधू यह सुरभि हुई है।
(सुरभि का हाथ मघ के हाथ में देते हुए)
जो थी अमृता लता वही अब छुई मुई है।
मघ, अपनी त्रुटि-पूर्ति इसे समझो सुख पाओ।

मघ— जो आज्ञा; हे सुरभि, देव को शीश झुकाओ।

सुरभि— महाराज, आक्षेप क्षमा करिए वे मेरे।

राजा— भद्रे, सब सौभाग्य रहें हेरे फिर तेरे।

(मघ से)

प्रकृत दोषियों को न दण्ड दूँगा मैं, तुम दो।

मघ— इन्हें क्षमा-फल स्वयं आप हे कल्पद्रुम, दो।

राजा— मेरे प्रतिनिधि-रूप रहो तुम निज प्रदेश में ;
पाओ यों साफल्य सहज निज सदुद्देश में।

रानी— कहो अनघ मघ, करूँ और क्या इष्ट तुम्हारा ?

मघ— बस माँ, अक्षय रहे तुम्हारी करुणा-धारा।

——